

कोहानिमूषा न सुहं लहंति,  
मागसिजो सोयपरा हवंति ।  
मायाविजो हुंति परस्त पेसा,  
बुद्धा महिच्छा नरयं उविति ॥ ३ ॥

कोपी कपी नदीं मुग पाता,  
मासी रह्या शोक - निमग्न ।  
कपटी होति दाम जगत के,  
गुरुध मोरुद्धुः नरक - निमग्न ॥ ३ ॥

कोरो रिमं कि ? अमयं अहिमा,  
मातो अमी कि ? हियमपमाओ ।  
माया भय कि ? ॥ ४ ॥

रिप वरा ? कोर, अनिय ? अहिमा,  
अधु, बीन है ? मान ।  
तिक रिपी, अग्रमार है,  
मायक भय भी मान ॥ ४ ॥

# अनुक्रम

## विषय

१. जीवन की परख
२. लोभी होने अर्थ-परायण
३. होने मूढ़ नर काम-परायण
४. बुधजन होते धान्ति-परायण
५. धर्म नियन्त्रित अर्थ और काम
६. पण्डित रहने विरोध में दूर
७. सञ्जन होने समय-पारणी
८. सञ्जनों का सिद्धान्तनिष्ठ जीवन
९. साधु-जीवन : समतायोगी
१०. सत्त्ववान् होते दुःशर्मा
११. बान्धव से जो विपदा में साथी
१२. त्रोगीजन मुख नहीं पाते
१३. अभिमानी पछनाते रहते
१४. कपटी होते पर के दास
१५. पाते नरक सुश्र-लाभची
१६. शोध से बड़बुर विष नहीं
१७. अहिता : अमृत की सरिता
१८. शत्रु बड़ा है अभिमान
१९. अप्रमाद : हितैषी मित्र
२०. माया भव की स्तान



## जीवन की परख

बन्धुओ !

आज मैं आपके सामने मानव जीवन की परख के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा करने का विचार लेकर आया हूँ। हमारी यह चर्चा काफी लम्बी होगी और कई दिनों तक चलेगी। मैं एक प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर इसी चर्चा आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भारतीय सभ्यता और धर्म के बहु-मूल्य रत्न भरे पड़े हैं। उनमें जीवन को अनुभव तथा विवेक बुद्धि से समृद्ध एवं प्रशिक्षित करने की अपूर्व क्षमता है। चाहिए उन रत्नों को ढूँढ़ने और परखने वाला।

**गौतमकुलक : एक परिचय**

इस सशिष्य और सारगर्भित ग्रन्थ का नाम है—गौतमकुलक। 'गौतमकुलक' नाम के पीछे क्या रहस्य छिपा है? इसे पूर्ण-रूप में तो जानी महापुरुष ही बना सकते हैं। मैं अपनी अल्प मति में इसका तात्पर्य जहाँ तक समझ पाया हूँ, वह यह है कि गौतम नाम के महर्षि द्वारा रचित कुलक 'गौतमकुलक' है। जैसा कि इस ग्रन्थ पर बानिबकार कहते हैं—

'यद् गौतम ऋषिणा प्रोक्तं गौतमं कुलकं चरम् ।

तस्य विस्तारतः कुर्वं वातिकं लोकाभाषया ॥'

—जो श्री गौतमऋषि ने ध्येष्ट गौतम-कुलक नामक ग्रन्थ कहा है, उग पर मैं लोक-भाषा में विस्तार से बानिक रच रहा हूँ।

इस ग्रन्थ के रचयिता श्री गौतमऋषि हैं, यह तो इस ग्रन्थ के नाम पर से स्पष्ट है। परन्तु श्री गौतमऋषि कौन थे? उनका जन्म, दीक्षा, विचरण कहाँ हुआ था? उन्होंने बिना हेतु में और बब इस ग्रन्थ को लिखा है, या धर्ममत्ता में धोनाश्रों के समझ कहा है? यह अज्ञान है। इतिहास दग विषय में भीत है। परन्तु वे गौतम-ऋषि धमणमगवान् महावीर के पट्टशिष्य मणप्रर श्री दग्भूनि गौतम मही हो सकते, क्योंकि उनके समय में ऐनमुनियो में बिगी भी ग्रन्थ को लिखिबद्ध करने को



प्रकार कुल को अपने उपदेशों की धरोहर में, यह अमम्भव नहीं है। अतः 'गौतम कुलक' का अर्थ हुआ—'महावि गौतम का धर्मण संस्कृति-मूलक कुल के लिए उस कुल के आचार-व्यवहार एवं नीति-रीति के सम्बन्ध में दिया गया उपदेश।"

### कुल के संस्कारों एवं स्मरण का दूरगामी प्रभाव

गौतम-कुलक में कुल शब्द जोड़ने के पीछे एक बहुत बड़ा रहस्य यह भी हो सकता कि कुल की स्मृति में बहुत बड़ा चमत्कार है। कुलीन व्यक्ति अपने शिष्ट कुल की मर्यादा में रहता है। वह अपने कुल की परम्परा को, अगर वह देश, काल और पाप की दृष्टि से हितकर हो तो कदापि छोड़ता नहीं। कुल के संस्कार जब ईश्वर होते हैं। आज तो लोग कुल के संस्कारों में प्रायः बंचित रह जाते हैं। बचपन से उन्हें विदेशी वेशभूषा, भाषा और रहन-सहन से अभ्यस्त किया जाता है। उन्हें अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में पढ़ने भेजा जाता है। इससे वे शूटेड-शूटेड हो जाते हैं और अपनी देशी पोशाक, भाषा और रहन-सहन को भूल जाते हैं। उन्हें अपनी मातृभाषा में कोई शायद सगाव या रुचि नहीं रहती और न ही वे पढ़ना चाहते हैं। कुल के शुद्ध संस्कार भी धीरे-धीरे उन सड़के-लडकियों में मुप्त हो जाते हैं। परन्तु जिनमें कुल के शुद्ध संस्कार होने हैं, वह मनुष्य विदेश जाने पर भी और वहाँ की भाषा बोलने पर भी अपनी देशी वेशभूषा एवं भाषा को नहीं छोड़ता, और न ही कुल के संस्कारों को छोड़ता है।

महात्मा गांधी जब विदेश जाने का विचार करने लगे, तब जाति के पक्षों ने आपत्ति उठाई कि वहाँ जाने पर कुल के संस्कार सुरक्षित नहीं रहते, अतः विदेश नहीं जा सकते। इस पर महात्मा गांधी की माँ पुनर्जीवाई ने कहा— 'विदेश जाने में यदि कुल के संस्कारों की ही क्षति है तो इसका उपाय तो मैं कर दूँगी, मैं अपने पुत्र को तीन बागों की बटोर प्रतिज्ञा दिनाकर ही विलायत भेजूँगी, फिर तो जाति को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।' फलतः गांधीजी की माँ उन्हें जैनमुनि श्री बेचरजी स्वामी के पास ले गईं और उनमें प्रायश्चित्त की—भेरा बेटा विदेश जा रहा है, अतः इन तीन प्रतिज्ञाएँ देना दीजिए—(१) शराब न पीना, (२) माताहारा न करना और (३) परस्त्री-सेवन न करना।' बेचरजी स्वामी ने महात्मा गांधी की तीन प्रतिज्ञाएँ देना दीं। भानुजी ने गांधीजी से कहा— 'बेटा! अब तुम खुशी से विजायत जा सकते हो। अब मुझे अपने कुल के संस्कारों की सुरक्षा का पूरा भरोसा हो गया है।' और नवशुभ महात्मा गांधी विदेश में इन तीनों प्रतिज्ञाओं की अक्षर बर हई परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। वे विदेश में भी अपनी भारतीय वेशभूषा में रहे।

वास्तव में कुल के आचार-विचारों की सुरक्षा के लिए नियमबद्धता की आवश्यकता है, वैसे कुल की स्मृति की भी आवश्यकता है। कुल की स्मृति में कितनी शक्ति है इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सके।



अगम्य कुल में जन्मे हुए जो सर्प होने हैं, वे वमन किये हुए विष को पुनः (पीवकर) पदादि ग्रहण करना नहीं चाहते; किन्तु हे अगम्यकामी मुने ! तुम्हें धिक्कार है, कि तुम अगम्य जीवन जीने के लिए वमन किये हुए काम-भोगो का पुनः आस्वादन करना चाहते हो। इससे तो तुम्हारा मरण अच्छा है। तुम्हें मान्य है कि मैं भोजराज के कुल की हूँ और तुम अंधक विष्णु के कुल के हो ! हम दोनों ही पवित्र उच्च कुल के हैं। क्या हम अपने कुल के पवित्र आचार-विचार को छोड़ देंगे ? हम कुलमर्यादा छोड़कर उस गन्धन कुल के सर्प जैसे नहीं बनेंगे। मुनिवर ! अपने कुल का और उसके पवित्र उच्च आचार-विचार का स्मरण करो, और शान्त होकर पुनः अपने समय में विचरण करो।"

किन्ती तोषता से शती राजीमती ने रपनेमि को पवित्र कुल की स्मृति दिलाई है ? परिणाम यह हुआ कि रपनेमि एकदम शान्त और समय में स्थिर हो गए।

कुल के सस्कार मनुष्य में कहीं तक काम करते हैं, इसके लिए महाभारत को उठाकर देखिये। जब पाँचों पाण्डव वनवास भोग रहे थे, उस समय एकदिन द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा—आपसे एक बात का समाधान चाहती हूँ, जब दुष्ट दुर्योधन को गन्धर्व ने कैद कर लिया था, तब आपने उसे छुड़ाने के लिए भीम और अर्जुन को क्यों भेजा था ?" इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा—“देवि ! मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, उसी कुल के मनुष्य को, जिस वन में रहता हूँ, उसी वन में मार जाता जाय, यह मैं बँसे देख सकता हूँ ? तुम पीछे भाई हो, लेकिन कुल के सस्कार तो मुझमें पहले से ही विद्यमान हैं। हम और कौरव आपस में भजे ही लड़ें, मगर हमारे कुल का भाई दूमरे के हाथ से मार साय, और हम धुरवार बैठे देखते रहे, यह नहीं हो सकता।”

सच है, कुल के उत्तम सस्कारों का क्या हुआ बीजारोपण मनुष्य को मत्त कार्य करने से रोक्ता है, किन्तु अच्छे कार्य करने से रोक्ता नहीं बल्कि अधि-बाधित प्रोत्साहन देता है। कुल के उत्तम सस्कार पाया हुआ व्यक्ति विपत्ति आने पर भी कुलमर्यादा का त्याग नहीं करता। कदाचित्त कुल-धर्मपालन और बाह्य मर्यादा दोनों में विरोध हो तो वह कुल-धर्मपालन करने लाचारी से हुए बाह्य मर्यादा भंग का प्रावृत्ति लेकर अपने धर्म में स्थिर रहता है।

महाभारत का ही एक प्रसंग है। पाण्डवों के राज्य में एक बार कुछ घोर बिभी की गोरों घुरा कर ले जाने लगे। वह गृहस्थ अर्जुन के पास शिकायत लेकर आया कि “हमारी गायों की रक्षा कीजिए, घोर गायें घुरा कर ले जा रहे हैं।” द्रौपदी पाँचों भादवों की पत्नी थी। उससे विवाह करने समय पाण्डवों ने यह नियम बना लिया था कि जिस भाई की बारी होगी, उस समय द्रौपदी के महल में दूमरा नहीं जा सकेगा। अगर झूलवग जाएगा तो उसे बारह बरस का वनवास का दण्ड





लिए किस प्रकार के जीवन ह्याज्य हैं, किस प्रकार का जीवन प्राप्त है ? एकान्त अर्थ और एकान्त काम से युक्त जीवन कितना विषम और दुःखद होता है तथा धर्ममय जीवन कितना शान्त, सुखद और गरम होता है ? बुनाचार की दृष्टि से जीवन निर्माण के लिए श्रोधादि चार बपाय, सप्तबुद्ध्यसन, हिमा आदि पाप, तथा कृपणता, दीनता, आदि अधर्म ह्याज्य हैं, और क्षमा, नम्रता, सरलता और संतोष तथा अहिंसा आदि धर्म, उदारता सहानुभूति आदि नैतिक गुण आदि उपादेय हैं। विवेकी जीवन और मूर्ख जीवन, धार्मिक जीवन पापी जीवन, इत्यादि अनेकविध जीवनों को परखने के लिए गौतमबुद्ध ने सुन्दर मार्ग निर्देश किया है। इसी प्रकार इसमें साधु जीवन और सद्गृहस्थ जीवन दोनों की विशेषताएँ भी बता दी हैं। गृहस्थ के लिए अपनी वर्तमान स्थिति में साधु-जीवन श्रेय तथा साधु के लिए गृहस्थ-जीवन हेय हैं। बुद्ध भिन्नाकर गौतमबुद्ध में अनेकविध जीवनों को परखने का विवेक दे दिया है। पाश्चात्य विद्वान मिलिप्स बुद्ध के शब्दों में—

“Be such a man and live such a life that if every man were such as you, and every life a life like yours, this earth would be God's paradise.”

ऐसे आदमी बनो और ऐसा जीवन जीओ, कि अगर प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे जैसा हो और तुम्हारे जीवन जैसा ही प्रत्येक व्यक्ति का जीवन हो, जगत् में कि यह धरती परमादिष्ट स्वर्ग बने।” गौतमबुद्ध इसी प्रकार का जीवन-भन्देस देता है कि तुम्हारा जीवन ‘मत्स्यं निबं सुन्दरम्’ से ओत-प्रोत हो कि उमका अनुसरण करके हर व्यक्ति इस समार में स्वर्ग का निर्माण कर सके।

### जीवन-विद्या . सर्वविद्याओं का मूल

किसी व्यक्ति को मोटर मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात तो है, उसे चलाने, सभालने और बिगड़ जाने पर सुधारने की कुशलता प्राप्त करना। अगर वह व्यक्ति मोटर चलाना नहीं जानता है तो या तो वह मोटर को उलटी-नीची चलाकर उसकी मशीन तोड़ देगा, या बड़ी बह दुर्घटनाग्रस्त करके अपने ही हाथ पैर आदि तोड़ लेगा। इसके विपरीत यदि उसे मोटर चलाना, सँभालना या सुधारना आता है, किन्तु उसके पास किसी मोटर नहीं है, तो भी वह ड्राइवर या मिसत्री का धया करके अपना सुखारा बना सकता है।

मानव जीवन भी एक बट्टूमय मोटर के समान है। इसकी विशेषता यह है कि इस जीवनरूपी मोटर को चलाने के लिए हमारे किसी ड्राइवर को रखने में काम नहीं चलता, इसे चलाने के लिए तो स्वयं ड्राइवर बनना पड़ता है। सर्वप्रथम इस जीवन रूपी गाड़ी को भन्वी-भक्ति परखने की जरूरत है कि यह गाड़ी बड़ी टूटी पूटी सराब या बिगड़ी हुई तो नहीं है कि रास्ते में ही धोखा दे दे ? यह जीवन गाड़ी ऐसी



## जीवन एक : दृष्टि बिन्दु भिन्न-भिन्न

मनुष्य का जीवन सबसे उत्कृष्ट जीवन है, परमात्मा के निकट पहुँचाने वाला, तथा आत्मा को अत्यन्त विगुद्ध बनाकर स्वयं सिद्ध, बुद्ध मुक्त बन जाने वाला जीवन है। भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट 'एग्रे क्षाया' के दृष्टिकोण से सारे ससार का जीवन एक समान आत्मा को लेकर चल रहा है। परन्तु देखने का, समझने का, एवं परखने का दृष्टिबिन्दु भिन्न-भिन्न होने से व्यक्ति जीवन को ठीक तरह से समझ नहीं पाता। मैं आपको इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझाना हूँ—

एक घनिक ने शहर से बाहर एक मकान इस विचार से बनवाया कि बाहर सुनी व शुद्ध हवा मिलेगी, सबका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। एक दिन उस मकान के पाम से एक चोर गुजरा। उसने सोचा कि चोरी करने वाले समय यह मकान मेरे लिए अच्छा आश्रम बनेगा। साथ ही इसमें चोरी करने में भी आसानी रहेगी, क्योंकि यह राँव के बाहर एकान्त में बना हुआ है। यह भी चोर की भावना। दूसरे दिन वहाँ से एक धुआँरी निकला। उसने सोचा—“जुआ खेले के लिए यह बिलकुल एकान्त स्थान है। पुनित आदि को यहाँ आने का अकसर नहीं मिलेगा।” तीसरे दिन एक परस्त्रीवासी समूह वहाँ से होकर जा रहा था। उसने इन मकान को देखकर सोचा—“आनन्द भोग करने के लिए यह बहुत ही उपयुक्त स्थान है।” इसके पश्चात् एक दिन एक भगवान् का भक्त वहाँ से गुजरा। उसने मकान को देखा तो क्षणभर टहर कर विचार करने लगा—“ध्यान में बैठने और भगवद्भजन करने के लिए यह अच्छा एकान्त स्थान स्थान है। यहाँ बैठकर ध्यान, भजन करने में मन भी खूब लगेगा। किसी प्रकार का बोनाहन न होने के कारण चित्त की एकाग्रता व तन्मयता में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।”

मकान एक है, परन्तु दृष्टि और भावना भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इसीलिए विभिन्न भावना वाले अपने-अपने दृष्टिबिन्दु और विचार से मकान को देखते हैं। आँसों में फर्क नहीं है, आँसों तो उस मकान की रचना की, जैसा यह बना है, उसी रूप में ही देखती हैं। मकान की आकृति, बाह्य ढाँचा, सम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, रंग-रंगोनाई सब को एक मरीची ही दिगार्द देती है, परन्तु फर्क है—उस मकान के उपयोग एवं मकान के दायरे उद्देश्य का देखने और सोचने के दृष्टिकोण में। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन शरीर के बाह्य ढाँचे, अंगोपांगों की रचना, यथास्थान अवयवों की व्यवस्था, विभिन्न इन्द्रियों से कार्य करने की क्षमता आदि स्थूल दृष्टि से प्रायः एक-ही दिगार्द देती है, परन्तु मानव जीवन का जो आन्तरिक रूप है, उसका जो उद्देश्य है या जो उपयोग सम्भव है, उसे देखने-गरमने और सोचने के दृष्टिकोण में फर्क है। और यही फर्क मनुष्य-जीवन का सही मूल्यांकन करने में सहायक बनता है।



मानव जीवन के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। आप भी अपने जीवन के सम्राट हैं। आर आत्मा हैं। आत्मा रूपी सम्राट को यह सारा दायित्व मिना है। आपकी मेवा के लिए मन, बुद्धि, हृदय, इन्द्रियाँ, हाथ-पैर आदि अगोपाग भिने हैं। परन्तु आप अपने जीवन का साम्राज्य पाकर भी उसका सवालन न कर सकें, उम जीवन को समझें नहीं, उसका उपयोग कैसे किया जाए, इसे भली-भाँति जाने नहीं, मन, बुद्धि आदि जो सेवक आपकी मेवा में तैनात हैं, उनसे डरने-डरते रहें, वे आपकी खिल्ली उड़ायें, आपकी बात माने नहीं, आप मन को अध्ययन मनन, ध्यान, जप में लगाना चाहते हैं, लेकिन वह लगता नहीं, इन्द्रियों को आप अपनी सेवा में लगाना चाहते हैं, लेकिन वे भी आपकी बात सुनी-अनसुनी करके विषयो की ओर दौड़ने लगती हैं, ऐसी स्थिति में भना बनाइये आपकी दशा भी उस भित्तारी राजा की-सी नहीं हो रही है? भित्तारी राजा भी सबसे डरता-कांपता था, क्योंकि उसमें भित्तारीवृत्ति गई नहीं थी, राजा पद पर पहुँचने के बाद भी वह अपने जीवन की उच्चता को समझा नहीं था। उसका उपयोग भी भलीभाँति जानता न था। इसलिए उसके जीवन में राजा का जीवन पाने का कोई आनन्द नहीं था, वल्कि दुःख था। हमीप्रकार आप भी अगर इन मन, शरीर, इन्द्रिय आदि से दबते-डरते हैं, वे आपकी बात नहीं मानने हैं तो समझना चाहिए कि आप भी अपनी पूर्वजीवन की गुलामी वृत्ति को नहीं छोड़ सके हैं। ऐसी स्थिति में कहना पड़ेगा कि आप जीवन के वास्तविक सम्राट नहीं हैं।

गहराई से विचार करने पर पता चलता है कि जो अपने आपको भूल जाता है, अपने आपको भलीभाँति जानता-परखता नहीं है, उसे दुनिया भी कुछ नहीं समझती। वह जब अपने जीवन का अर्थ, रहस्य, उपयोग आदि भली-भाँति समझ लेता है, तब कोई कारण नहीं कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि उसकी अवगणना करें, उसकी आज्ञा का उत्संगन करें या उसे गुनाह बनायें।

**अज्ञानी की तरह दुनियादारी में फँसकर मत जीओ**

परन्तु हम देवदुर्लभ मानव-जीवन का इतना सुन्दर मूल्यांकन किये जाने और उसके दायें उपयोग के सम्बन्ध में मार्गदर्शन दिये जाने पर भी मनुष्य जब अर्थ-परायण, कामपरायण, धर्मपरायण, कर्मापरायण, ध्यमनपरायण, विषयपरायण आदि विभिन्न स्तर के जीवनो को अपनी आँसो में हम दुनिया में देखता है तो वह शकाचोष में पड़ जाता है, कुछ भी नियंत्रण नहीं कर सकता कि इनमें से कौन-सा जीवन प्रशस्त है? कौन-सा जीवन जीने में यहाँ भी सुखशान्ति मिलेगी और अपने जन्म में भी। तथा मोक्ष के लक्ष्य को ओर से जाने वाला जीवन कौन-सा है? क्योंकि इन सभी जीवन जीने वालों में बाहर से तो कोई काम, कोई ज्यादा सुखी नजर आता है। हमीलिए गौतमबुद्ध ने इन विविध प्रकार के जीवन जीने वाली की परत दे दी है। परन्तु हमको नजर-अन्तर कर देने का परिणाम यह होना है कि मनुष्य-जीवन पाकर भी



बुक्कुर-जीवन, और वानर-जीवन, इन चार विभागों में विभक्त होकर अज्ञानी मनुष्य अपना जीवन समाप्त कर देता है ।

एक साधना निष्ठ कवि ने हमी प्रश्न को उठाया है—

यह दुनिया है, यहाँ जीवन बिना बिचारी धाता है !  
हजारों जन्म लेने हैं बनाना किसको आता है ?  
कमाने के लिए सारे लूब ही बौड़ करते हैं ।  
तुम्हो कहूँ सही, धन का कमाना किसको आता है ?  
लगाने हैं मधुर प्रीति, क्षणिक दो चार रोजों की ।  
मगर सबको भुलसल का लगाना किसको आता है ?

इसीलिए सेंट्येप्यु ने निगा है—जीवन का द्वार तो मीघा है, पर मार्ग संकीर्ण है ।”

जीवन, एक यात्रा पाथेय की आवश्यकता मनुष्य का जीवन क्या है ? इम सम्बन्ध में एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है—

“Life is a journey, not a home ' a rood, not a city of habitation, and the enjoyments and blessings we have are but little inns on the roadside of life, where we may be refreshed for a moment, that we may with new strength press on to the end ”

“जीवन एक यात्रा है वह कोई घर नहीं, मड़क नहीं, और न ही बसने के लिए नगर है । और इम जीवन यात्रा में जो आनंद-प्रमोद और देन हम पाते हैं, वे तो जीवन की छोटी-छोटी पथरगालाएँ हैं, जो मड़क की चाजू में पड़ती हैं, जहाँ हम क्षण भर मुस्ता कर लाजगी लेते हैं, न-कि मरणात्रा होकर हम फिर से नई शक्ति और श्रुति के साथ अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ सकें ।”

बिना मुन्दर विचार है, जीवन का समाप्तने के लिए । परन्तु हमारी जीवन-यात्रा काफी सम्बन्धी है, उसे सत्य करने के लिए पाथेय की आवश्यकता रहती है । बिना पाथेय के यात्रा करने वाला पथिक रास्तों में भूल-व्यास में घबरा जाता है, वैसे ही जीवन यात्री भी रास्ते में मुश्किलों और मुसम्भारों का पाथेय लेकर न बने तो उसे परेशानी उठानी पड़ सकती है, वह भटक भी सकता है, इधर-उधर । उत्तरा-ध्ययन सूत्र भी इस बात का गवाही है—

अद्वयं जो महं तु अपाहेभो पवजई ।

गच्छंती सो कुही होइ छुटानहाए पीडिमो ॥ १६/१६ ॥

जो साधनापथिक जीवन की इस सम्बन्धी यात्रा में बहुत सम्बन्ध महान् मार्ग पर बिना पाथेय के चलता है, वह रास्ते में ही भूल-व्यास में पीड़ित होकर दुखी हो जाता है ।





## लोभी होते अर्थपरायण

धर्मप्रेमी घन्धुओ ! बर मैं आपके सामने गौनमटुलक की पृष्ठभूमि और उस ग्रन्थ में जीवन की परब के बारे में कह गया था। गौनमटुलक में जीवन की परब के लिए पढ़ना सूत्र दिया है—

‘सुद्धा नरा अर्थपरा हवन्ति’

लोभी नर अर्थपरायण होते हैं। इसका आशय यह है कि लोभी व्यक्तियों का जीवन सदा अर्थ के पीछे लगा रहता है।

इस संसार में अनेक प्रकृति के मानव होते हैं। कोई लोभी होता है तो कोई सन्तोषी, कोई शृणुण होता है तो कोई उदार, और कोई निपट स्वार्थी होता है तो कोई परमार्थी। इन विभिन्न जीवनो में से आपको अपने लिए चुनाव करना है कि आपके लिए कौन-सा जीवन उपादेय है? तथा इनमें से कौन-सा जीवन स्वाज्य और कौन-सा जेय है? इसे भी परखना है। यह भली-भाँति समझना है कि लोभी जीवन हेय क्यों है और लोभी प्रकृति के लोग इसे उपादेय समझकर क्यों अपनाए हुए हैं?

लोभी मानव की तीन मनोवृत्तियाँ

लोभी जीवन संसार में सबसे निहृष्ट जीवन होता है। लोभप्रस्त मानव की सदा तीन परिणाम धाराएँ होती हैं, जो इस प्रथम भूय में ‘अर्थपरा हवन्ति’ से स्पष्ट भूषित कर दी हैं। सबप्रथम उसकी परिणामधारा होती है—धन की रट, दूसरी होनी है—संसार के पदार्थों के महह करने की रट, और तीसरी होनी है—स्वार्थ परायणता। आपने देखा होगा कि लोभी व्यक्ति में प्रायः ये तीनों बुमनोवृत्तियाँ पायी जाती हैं—बहु धन के पीछे सोवना बना रहता है, मगार के मनोज पदार्थों को जुटाने में तलार रहता है और सदा अपने स्वार्थ को साधने की ताक में रहता है। इन्हींलिए लोभी मनुष्यों को अर्थपर कहा है। अर्थ शब्द में ये तीनों ही अर्थ निहित हैं।

लोभी जीवन धन की रटन

लोभी मनुष्य में धन की अत्यधिक भूय होती है। धन की बचाबोध में उसकी आँखें इतनी खुलिया जाती हैं कि वह परिवार, समाज या राष्ट्र में जो निधन होते, उनको कोर आँख उटाकर भी नहीं देखता, चाहे उनमें अन्य गुण हों। उसके



घन जब मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर सवार हो जाता है तो घन पर आधिपत्य जमाने के बजाय घन उस पर आधिपत्य जमा लेता है। आप जानते हैं कि घोड़ा, रथ, बार, रिफ़ा आदि सवारियों पर सवार होकर मनुष्य आराम से आने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है, परन्तु ये ही सवारियों अगर मनुष्य के फिर पर सवार हो जाय तो बड़ी हास्यास्पद और विविध स्थिति हो जाती है, उग मनुष्य की। सम्भव है, वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाय या उसके हाथ-पैर टूट जाय अथवा जान पर ही आये। यही हाल उन सोमी मनुष्यों का हो जाता है, जिनके मन-मस्तिष्क पर घन सवार रहता है।

एक ठेकेदार माह्व थे। बहुत बड़ी ठेकेदारी का काम था उनका। उनके मन-मस्तिष्क पर हरदम अधिक लाभ के ठेके की घन सवार रहती थी। घन उन पर इतना अधिक हावी हो चुका था कि बान-बान में उनके मुँह में वे ही ठेकेदारों सम्बन्धी लाभ के शब्द निकल पड़ते थे, चाहे बानचीन का विषय पारिवारिक या सामाजिक हो क्यों न हो।

उनका एक पुत्र था, जो विवाहयोग्य हो चुका था। अनेक कन्या बाने अपनी-अपनी कन्या में उनके पुत्र की सगाई के लिए आने लगे। ठेकेदार माह्व के परिवार के लोग, मित्र एवं सम्बन्धी भी लडके का सम्बन्ध तय कर लेने पर जोर देने रहते थे, परन्तु ठेकेदार माह्व घन की टोह में रहते थे, इस कारण एक या दूसरे बहाने में टालने रहते थे। एक दिन वे अपने मित्रों के बीच बैठे थे कि सबने पुत्र का सम्बन्ध करने के लिए उन पर दबाव डाला और पूछा—“आगिर आर आने लडके का सम्बन्ध क्यों नहीं करते हैं, जबकि इतने लडकी बाने बार-बार आपके द्वार पर आने हैं? आगिर क्या इच्छा है आपकी?” ठेकेदार माह्व मर्या बोल उठे—“भाई! पुत्र का विवाह तो करना ही है। जिनका टेंडर ऊँचा होगा, उमी के माथ सम्बन्ध कर लेंगे।” यह सुनते ही मित्रों के मुख में हँसी का कञ्जारा छूटा। ठेकेदार माह्व को भी अपनी भूल मात्तम हुई, वे हरदम शीर एवं और भूल मुधारने हुए बोलें—“अपयोग! मेरे मुँह में घनकी से टेंडर शब्द निकल गया। वास्तव में मेरा अभिप्राय था—अच्छा कुल, उच्च परिवार और उच्च आचार-विचार।” लेकिन अब क्या होता? उन्हें हास्य का पात्र तो बनना ही पड़ा। वस्तुतः ठेकेदारों की मन-मस्तिष्क पर आना व्यवसाय और घन का लाभ दूरी गरूर में छाव हुए थे। इसीलिए विवाह सम्बन्ध की बान में भी पर्याप्त घन लाभ का सूचक व्यवसायिक ‘टेंडर’ शब्द उनके मुख से निकल गया था।

हाँ, तो मैं कहता था कि सोमी मनुष्य घन के मोह में इतने पागल हो जाते हैं कि घन के सिवाय सगार में उन्हें कुछ शिखा ही नहीं। रात-दिन घन ही घन उनके हृदय में बना रहता है। वह सोदरी का टिबट शरीर कर एक ही रात में



हजारों कुंवारी सड़कियाँ, सघवाएँ एवं विघवाएँ वेष्मावृत्ति अगीकार करके अपने शरीर को बंध देती हैं, अपने धर्म को छोड़ देती हैं। भोजप्रबन्ध में स्पष्ट कहा है—

मातरं पितरं पुत्रं, भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।  
सोमाविष्टो भरो हन्ति, स्वामिनं वा सहोदरम् ।

सोमाविष्ट मनुष्य अपने पिता, माता, पुत्र, भाई, मित्र, स्वामी एवं सहोदर को भी (धन के लिए) मार डालता है।

धन के लोभ में मनुष्य अपने स्वास्थ्य को भी नहीं देगता, और न ही अपने प्राणों की परवाह करता है। यह धन का साम हो तो मरने के लिए तैयार हो जाता है। उनका जीवनमूल्य होता है—चमड़ी जाय, पर दमड़ी न जाय। यह केवल धन सचय करने में ही रहता है, उसको भ्रवं करना उसे नहीं मुहाता। वह तो भरी हुई तिजोरी देखकर ही प्रसन्न होता है।

एक सेठजी थे। देवयोग से वे बीमार पड़ गए। अपने पिता के इलाज के लिए पुत्र शहर के एक नामी और विज्ञेय डॉक्टर को ले आए। डॉक्टर को घर आए देव सेठजी के हास्य गुम हो गए। वे सोचने लगे—‘यह तो बहुत भारी खर्च में उतार देगा।’ अब वे चुप न रह सके, पूछ बैठे—‘डॉक्टर साहब! मेरी बीमारी के इलाज में बिना खर्चा होगा?’

डॉक्टर ने हिमाच सगाकर बनाया—‘सेठजी! मेरी फीस, दवाइयो और दजेवगनो में कुन मिला कर लगभग ६०० रुपये तो खर्च हो ही जाएंगे।’ यह सुनते ही सेठजी ने अपने पुत्रो को पास बुला कर धीरे से उनके कान में कहा—‘बताओ तो, मेरे अतिमंस्कार पर बिना खर्च हो जाएगा?’ एक पुत्र ने बनाया— १५० रुपये।’

सेठ ने तपस्व से कह दिया—‘जो बग मुझे मर ही जाने दो। इलाज की कोई जरूरत नहीं। ४५० रुपये तो बचेंगे।’

सेठ का खर्चा देकर डॉक्टर की हिम्मत फीम मांगने की न हुई। उसने धुरधाय अपना बैग उठाया और वहाँ से चल दिया।

ऐसी हीनो है, सुष्ठव की अर्धनिष्ठा। वह मर जाना भजूर करता है, परन्तु पैसा खर्च करना नहीं। वह मरने-मरने धाँ बूटिसना करता है। धननुष्ठक रात-दिन इसी रीटध्यान में रहता है कि विगवा धन, कैसे प्राप्य बरूँ?

सोमी भर्तृहरि जगत्त में एक मृग के नीचे बीटे थे कि सहसा उनकी दृष्टि कुछ दूर पडे एक चमचौले हीरे पर पडी। उन्होंने अपने मन को गमगाकर आश्चर्य विना। कुछ ही देर बाद दो क्षत्रिय मित्र उधर में निषने। दोनों की दृष्टि एक साथ उस हीरे पर पडी। दोनों उम्र लेने के लिए हाटे। दोनों की लमवारें ध्यान में बाहर आ गई। भर्तृहरि ने दोनों को गमगाने की बहुत बोजिश की लेकिन सोप और त्रोध



चार दिन बाद ही जब सोने के मित्रों के बड़े उन्हें किमी तरह का सामान नहीं मिला तो वे झूठे मरने लगे । आश्विन मजबूर होकर दोनो फिर खलीफा के न्यायालय में उपस्थित हुए और सारी सम्पत्ति दी और उनके चरणों में प्रार्थना की—“मैंने सोम के पशुभूत होकर किसी भी तरह धन पाने की कोशिश में बड़े-बड़े अनर्थ किये । अब आप इस धन को शहर की जनता में बँटवा दें ।” दोनो को यह प्रतीति हो गई कि “धन दबाकर रखने में नहीं, उसका गनुपयोग करने से ही सुख मिलता है ।”

मधमुच घोरी की जड़ धनतिप्पा में है । घोरी के अपराध में पकड़े गये युवक ने जजनाहब ने पूछा—तुमने घोरी क्यों की ? उसने कहा—“क्या बताऊँ, मुझे रातो-रात सम्पत्ति बनने की धुन सवार हुई । आगे प्रयत्न में, सफल भी हो गया था, लेकिन बम्बलन सिपाही मुझे पकड़ लाए । मेरे मसूबे धरे ही रह गये ।”

इस उत्तर से सोभी की मनोवृत्ति का स्पष्ट परिचय हो जाता है ।

### धनलोभ सत्य विनाशक

इतना ही नहीं, धन का लोभ सत्य का खात्मा कर देता है । केवल एक रिक्वार और समाज या राष्ट्र ही नहीं, मारे ममार में लोभ या लोभी असत्य, धोखे-बाजी, छलकपट, अन्याय आदि अनर्थों का मूल बना हुआ है । बड़े-बड़े राष्ट्र धन के लोभ में आकर बूटनीति का नें चनते हैं, बड़े-बड़े पद्मन्त्र रचते हैं । हम में एक प्रसिद्ध कहावत है—

When money speaks, the truth is silent."

‘जब धन बोलने लगता है, तब सत्य को चुप होना पड़ता है ।’ वास्तव में धनलोभ सत्य और प्राणिकता का शत्रु है ।

### परस्पर अविश्वास का कारण धनलोभ

धनलोभना परस्पर अविश्वास का भी कारण बन जाती है । बड़े-बड़े कुलीन पदों में धनलोभ परस्पर अविश्वास पैदा कर देता है । अविश्वास ही जाने पर मनुष्य को मर्देह और मरु का रोग लग जाता है । त्रिमगे जन्मी छुटकारा पाना मुशकिल है । इमीलिए एक यदि तो धन को दूर से ही मत्ताम करता है—

अविश्वास-निघानाय महापातकहेतवे ।

विनापुत्रविशेषाय हिरण्याय ममोऽनुने ॥

हे धन ! तू अविश्वास का मजाना है महापात का कारण है, पिता और पुत्र तो मड़ाने बया है, अब तूझे दूर में ही मेरा मजम्बार है ।

एक मीननी मीने अपनी मीन के पुत्र को विष देकर इमीलिए मार डालती कि वह बडा होने पर मेरे पुत्रों के हक में से हिस्सा लेगा ।





हैं, उनके मूल में भी प्रायः यही सोमवृत्ति काम करनी है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं—

“कोइ सोहं, वेरं बड्ढ अप्पणो ।”

जो धन का सोम करते हैं, वे आपस में एक दूसरे में वैर बढ़ाते हैं।

सोभी मनुष्य में अत्यधिक-स्वार्थ-परायणता

सोभी मनुष्य की दूसरी मनोवृत्ति होती है—स्वार्थपरायणता। वह अपने ही स्वार्थ में बन्द हो जाता है। सोम की बीमारी, ऐसी पानी कीमारी है कि मनुष्य उसमें अपने में सिमटना शुरू हो जाता है। इससे वह गिरता चला जाता है। शूद्र स्वार्थ के गरीबों घेरे में बन्द होकर यह बात-बात में नीचता पर उतर आता है। यह स्वार्थ के बिना धन ही नहीं करना। जहाँ अपना स्वार्थ साधना होगी, वहाँ उसकी रुचि होगी। क्योंकि उसे तो सोम का ज्वर चढ़ा रहता है। इसीलिए एक नीतिकार ने कहा है—

“अकने द्वेषो, जइं प्रीति प्रवृत्तिर्गुह्यमंघने ।

मुत्ते बटुवता नित्यं धनिनां ज्वरिणामिव ॥”

स्वार्थपरायण अतिसोभी मानव में भक्त के प्रति द्वेष, जड़ में प्रेम, गुह्यजनों (की आशा) का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति और मुग में (वाणी की) बटुता ज्वरप्रसूत पुरणों की तरह धनिनों में भी दे-धी-प्रायः होती है। ज्वरप्रसूत को भक्त मानी भोजन में अरुचि होती है, वैसे ही स्वार्थी धन सोभी की भी भक्ति करने वाले के प्रति द्वेष या अरुचि होती है, बुगार वाले को पानी की व्यास बढ़न लगती है, इन्तित्थ जल में प्रीति होती है, सोभी की जड़ धन में प्रीति होती है, चेतन धन को वह पूछना भी नहीं। बुगार वाला नुद मा गरिष्ठ भोजन का लपन करने में प्रवृत्त होता है, जबकि सोभी भुरजनों की बान का उल्लंघन करता रहना है। बुगार वाले का मुँह बरपा हो जाता है, सोभी का मुँह भी बचन की बटुना के कारण कड़वा रहना है। इसीलिए सोभी स्वार्थपरायण मानवों और ज्वरप्रसूत लोगों की एक-सी रसा है। स्वार्थपूर्ण जीवन गवगः दुःखदायी जीवन है। इसका परिणाम नरक की-सी परि-रिदनिनां पैदा कर देना है। क्या घर में, क्या बाहर में, सपर्यं, द्वेष, ईर्ष्या, सोम, मानसा भादि दोषों का मूल कारण स्वार्थपरायणता है। स्वार्थपरायणता के कारण ही मनुष्य और, बेईमान, टग और धर्म बनता है। स्वार्थपरायण व्यक्ति केवल अपनी ही बान गोबना है। दुनिया चाहे मरे या जीए, उसका करना स्वार्थ सधना चाटिण, यही उसकी वृत्ति रहती है।

समागम बुद्ध की अवन्ती में विजाल गया विगारिन हो गई थी। योई-ने योइ धिधु और थोटी सासलजन शोध रह गए थे। इनमें प्रायः विचारक भाग थे और सभी अपनी-अपनी गवाओ का समाधान लयापन से बना रहे थे। सभी बड़ी पाग में



हैं तो धीरे धीरे उड़कर उड़ जाने हैं, जवने हुए वन को देखकर मृग वहाँ में भाग जाने हैं, निर्धन पुत्र्य को गणिका भी छोड़ देनी है, मन्त्री लोग धीरहित राजा को छोड़ देते हैं । सभी लोग अनेक-अनेक मानव में एक-दूसरे में शक्ति लेते हैं । इस स्वार्थ प्रधान मंगार में क्या किनका धिय है ?

स्वार्थ भावना में दूसरे की हानि नहीं दिखती । दो व्यापारी थे । एक था घी का व्यापारी और दूसरा था चमड़े का । वर्षाऋतु आने वाली थी । घी के व्यापारी की नीयत यह थी कि वर्षा होगी तो गाधो-भैंसों को चरने को मूत्र मिलेगा और दूध बढ़ने लगेगा । मैं मूत्र पीना बचाऊँगा । परन्तु चमड़े के व्यापारी की भावना यह थी कि वर्षा नहीं होगी तो डोर मरेंगे और उनका चमड़ा मुझे मिलेगा, जिसे बेच कर मैं मानामाल हो जाऊँगा । बाइए, किनकी धृष्ट स्वार्थभावना की दोनो की । दोनो ही अपना-अपना स्वार्थ देखते थे !

सुख्य मनुष्य का जीवन स्वार्थपरायण हो जाना है । मंगार में जितने भी सोभरपरायण लोग हुए हैं, वे अतिस्वार्थ में पड़कर अनेक अनर्थ करने देगे गये हैं । स्वार्थप्रधान संसार का मन्त्र चित्र देखिए—

स्वार्थ का है सब संसार ।

सुरीशान्ता ने निज पति को दे विषयुक्त आहार ।

स्वार्थ मिद्धि जिन देखो संता, हर दिया अत्याचार ? स्वार्थ ० ॥

कौणिक और औरंगजेब ने किया न मोक्ष विचार ।

स्वार्थमान हो अपने विनु को दिया कंब में डार ॥ स्वार्थ ० ॥

सुरीशान्ता ने राज्यतोष में प्रेरित होकर राजा प्रदेशी को बहर भिना हुआ भोजन दे दिया था । मंगार के इतिहास में मंग्राट कौणिक और बादशाह औरंगजेब पर स्वार्थभावना के कानन का टीका है । दोनो ही बाहर से छर्मात्मा और प्रभु भक्त दिखाई देने थे, परन्तु अन्तर में अनिस्वार्थ रूपी धिय ने उनका मारा ही जीवन विनाश और बदनाम बना दिया था ।

यो सो प्रत्येक मनुष्य में बाड़ा बटून स्वार्थ होना है, परन्तु वह स्वार्थ जब भयंश का अतिव्रमण करके दूसरो के स्वार्थों को कुचल जानता है, जब वह दूसरो की हानि के आधार पर अपने स्वार्थ को निद्ध करता है, या मृद का भी लाभ मँदाकर दूसरो की हानि पहुँचाना है, तब तो वह अनि तोष प्रेरित मनुष्यार्थी कहना है । भृंहृि ने चार बोटि के स्वार्थी बताया है—

एके सभुरवा, परार्थपटका, स्वार्थान् परिप्यय ये ।

सामान्यान्तु परार्थमुत्तममृतः स्वार्थाविरोधेन ये ॥

तेऽप्यो मानुवराक्षसा, परहित स्वार्थाय निजान्त ये ।

ये तु धननि निरर्थकं परहित ते के न जानीमहे ॥”



के लिए अपने प्राणों को भी शौर देता है। बुधनदमाला में इन सम्बन्ध में एक गुण्य दृष्टान्त मिलता है—

तक्षशिलानगरी के दक्षिण पश्चिम में बसे उच्च स्थान प्राग का निवासी सोम-देव 'यथा नाम तथा गुण' वाला था। उनके पाम पिता के द्वारा उपासित किया हुआ बहुत धन था। पिता की छत्रछाया में उसका जीवन गुण से स्थिति ही रहा था। उसे किसी चीज का अभाव या कष्ट नहीं था। फिर भी उसकी सोभी वृत्ति बहुत ही बढ़ी-बढ़ी थी। उसी सोम-वृत्ति से प्रेरित होकर वह झूठ, कपट, धोमेबाजी आदि करके लोगों से धन-धन-प्रकारेण धन हुरण करने में तत्पार रहता था। इगणित् सांग उसे धनदेव के नाम से न पुकार कर सोमदेव के नाम से पुकारते थे। इसी नाम से वह प्रतिष्ठ हो गया था।

एक दिन सोमदेव ने सोमवृत्ति से प्रेरित होकर धनोपाजन हेतु अपने पिता से विदेशगमन की अनुमति मांगी। पिता ने उसे समझाया—“बेटा! अपने यहाँ क्या भी है, जो तू विदेश बसाने के लिए जा रहा है। अपने घर में धनता धन है कि कीड़ियों तक भी गमाप्त नहीं होगा। घर में गुण में रहो, दान-पुण्य आदि शुभ-करने रहो।”

लेकिन सोमदेव के मिर पर तो सोम का भूत सवार था। इसलिए पिता की सलाह बैसे मान लेता? अतः उसने विदेश जाने की हठ पकड़ ली। अनिच्छता : महमत हो गए। सोमदेव सारथ लेकर विदेश यात्रा के लिए चल पड़ा। वह मोरारकपुर पहुँचा। वहाँ पिता के मित्र भद्र सेठ के यहाँ ठहरा। वहाँ व्यापार चला साम भी हुआ। किन्तु साम होने के साथ गन्तोप होना तो दूर रहा, अधिकाधिक सोम बढ़ता गया। शास्त्र में मानवमन की मूढमवृत्ति का निर्देशन : है—

“जहा साहो, तहा सोहो, साहा सोहो पवइइइ”

“ज्यों ज्यों साम होता है, त्यों त्यों सोम होता जाता है। साम से सोम सतत

भी। उसके मन में और अधिक धन प्राप्ति की लालसा तो से जब उसने रत्नदीप की सम्पत्ति की धान सुनी तो सोम-वृत्ति रत्नदीप जाने की ठान ली। भद्रसेठ को आधे ले मान भर लिया और मार्ग के कष्टों की ल दिया।

ए में बढ़ने से भी नहीं हृषिकिचाना, के कारण से ही भर जाय।

के से बाकी धन बसाया। वहाँ से 'र' बन पड़े। सोम की मात्तान्



के लिए अपने प्राणों को भी शौंक देता है। कुवलयमाला में इस गम्बन्ध में एक सुन्दर दृष्टान्त मिलता है—

तक्षशिलानगरी के दक्षिण पश्चिम में बसे उच्च स्थल ग्राम का निवासी लोभ-देव 'यथा नाम तथा गुण' वाला था। उमने पाम पिता के द्वारा उपाजित किया हुआ बहुत धन था। पिता की छत्रछाया में उसका जीवन सुख से व्यतीत हो रहा था। उसे किसी चीज का अभाव या कष्ट नहीं था। फिर भी उसकी लोभी वृत्ति बहुत ही बढ़ी-बढ़ी थी। उमी लोभ-वृत्ति से प्रेरित होकर वह शूठ, कपट, धोमेबाजी आदि करके लोगो में घेन-केन-प्रकारेण धन हूरण करने में तत्पर रहता था। इसलिए लोग उसे धनदेव के नाम से न पुकार कर लोभदेव के नाम से पुकारते थे। इसी नाम से वह प्रसिद्ध हो गया था।

एक दिन लोभदेव ने लोभवृत्ति से प्रेरित होकर धनोपाजन हेतु अपने पिता से विदेशगमन की अनुमति मांगी। पिता ने उसे समझाया—“बेटा! अपने यहाँ क्या बर्मी है, जो तू विदेश बर्माने के लिए जा रहा है। अपने घर में इतना धन है कि मात पीड़ियों तक भी समाप्त नहीं होगा। घर में सुख में रहो, दान-पुण्य आदि शुभ-कार्य करते रहो।”

लेकिन लोभदेव के मिर पर तो लोभ का भूत सवार था। इसलिए पिता की सखी मौस बर्मे मान लेता? अत उसने विदेश जाने की हठ पकड़ ली। अनिच्छा से पिता सहमत हो गए। लोभदेव साथ लेकर विदेश यात्रा के लिए चल पड़ा। वह वहाँ में सोपारबपुर पहुँचा। वहाँ पिता के मित्र भद्र सेठ के यहाँ ठहरा। यहाँ व्यापार में अच्छा लाभ भी हुआ। किन्तु लाभ होने के साथ गन्तोप होना तो दूर रहा, उलटे अधिकाधिक लोभ बढ़ता गया। शास्त्र में मानवमन की गूढवृत्ति का निदर्शन दिया है—

“अहा लोहो, सहा लोहो, साहा लोहो पवद्दइ ”

‘ज्यो ज्यों लाभ होता है, त्यो-त्यो लोभ होता जाता है। लाभ से लोभ सतत बढ़ता ही जाता है।’

यही दशा लोभदेव की थी। उमके मन में और अधिक धन प्राप्ति की लालसा ज्यी। सोपारबपुर के व्यापारियों में जब उमने रत्नद्वीप की समृद्धि की बात सुनी तो उमके मुँह में पानी भर आया। उसने रत्नद्वीप जाने की ठान ली। भद्रसेठ को आधे लाभ का साक्षीदार बनाकर बाहनों में उमने माल भर लिया और मार्ग के बट्टो की परवाह न करके वह रत्नद्वीप की ओर चल दिया।

सब है, पनन्तोप व्यक्ति समृद्ध के क्षयाह जन में बूदने में भी नहीं हिचकिचाता, चाहे वहाँ उसे कुछ भी न मिले, उसका मुँह नमक के खारेपन में ही भर जाय।

रत्नद्वीप में लोभदेव और भद्रसेठ ने व्यापार में काफी धन बर्माया। वहाँ से अपने बाहन भर कर दोनों वापस सोपारबपुर की ओर चल पड़े। लोभ की लाला





### अर्थलोभ आधुनिक सामाजिक बुराईयों का मूल

आज के युग में छल, प्रपंच, झूठ-फरेब, भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, भिलावट, रिश्वतखोरी, तस्करी, चोरबाजारी आदि जितनी भी सामाजिक बुराईयाँ फैली हुई हैं, जिनके कारण हमारा राष्ट्र एवं समाज नैतिक दृष्टि से खोखला एवं दिवालिया हो रहा है, इनकी तह में जाएँ तो मालूम होगा कि ये सब अर्थलोभ की करामत है। अर्थलोभ ही इन सबका जन्मदाता है। प्रामाणिकता, न्याय-नीति और सत्य व्यवहार की कमी आदि सब कुछ सोभी मनुष्यों की लुब्धकवृत्ति का ही परिणाम है। अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु की भिलावट क्यों होती है? दूध में पानी क्यों भिलाया जाता है, मोल-नाप में ग्यूनाधिकता का क्या कारण है? रिश्वत क्यों ली जाती है? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है, यह है अधिकाधिक धनप्राप्ति की लालसा।

### सारे बुराफातों की जड़ : धनलिप्सा

गहराई से देखा जाए तो संसार में कोई भी ऐसा पाप नहीं है, जो धन के लोभ के कारण न होता हो। चोरी, झूठ, टगी, व्यवहार, छल, बेईमानी, अन्याय, हिंसा, जुआ, आदि कोई भी ऐसी बुराई नहीं है, जो अर्थ लोभ के कारण न होनी हो। इसलिए एक बहावत महत्तर है—

“Covetry is the cause of many disastours.”

—लुब्धता अनेक विपत्तियों का कारण है।

धीमद् भागवत में इसे अनर्थों का मूल बताते हुए कहा है—

“स्तेयं हिंसाऽनृत दम्भः कामः शोषः स्मयोलसः ।  
 भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥  
 एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थाभिला मता नृणाम् ।  
 तस्मादर्थमनर्थस्य धेयोऽर्थो दूरतस्त्यजेत् ॥

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, शोष, स्मय, मद, भेद (पूट) वैर, अविश्वास, स्पर्धा और व्यसन—जुआ, व्यवहार और शराब; ये १५ अनर्थ मनुष्यों में अर्थभूलक माने गए हैं। अतः धेयोऽर्थो पुरुष अर्थनामवाले इस अनर्थ का दूर से ही त्याग कर दे।

### धन का नशा . सबसे बढ़कर

अर्थापरायण सोभी मनुष्य यह नहीं देखना कि दूगरे के माथ में क्या लम्बग्य है? वह अपने अर्थ के लोभ में दूगरे का अपमान करते देर नहीं लगाता। वास्तव में धन का नशा बहुत ही बढ़कर है, इस बात को राजस्थान के बिहारी बवि ने भी बताया है—

जनक जनक से सो गुनी मारहता अधिपाप ।

या जाएँ औरान है, या पाएँ औराय ॥



सिद्ध करने में कौन-गा लाभ है ? क्या सुख है ? कौन-सा पैसा भर जाता है ? वर्तमान युग का यह एक ज्वलन्त प्रश्न है, जिसका उत्तर हमें अनुभवों आँसों से ढूँढना चाहिए ।

अर्थ के पीछे भाग-दौड़ करने वालों का कहना है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति आदर-सम्मान के माप जीना चाहता है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा हो, सभी उसकी बाह्यवाही करें, उसे उच्च आगम दें, इस प्रकार की प्रवृत्ति इच्छा मनुष्य में रहती है । और इस अभिनाया की पूर्ति के लिए अधिकाधिक धन प्राप्ति एक प्रबल साधन है । जिसके पास धन होता है, वह धन से जीवन-यापन की सभी सामग्री, सुख-सुविधाएँ खरीद सकता है, दूसरों को पैसे देकर काम करा सकता है, सभी समस्याओं में पैसा देकर नाम कमा सकता है । पैसा होने पर मनुष्य को सब जगह आदर मिलता है । समाज में सर्वत्र पैसे की पूछ है । वह यही सोचता रहता है कि 'सर्वे गुणाः काचन-माश्रयन्ति'—सभी गुण स्वर्ण-धन के आश्रय में रहते हैं । ये ऊँचे-ऊँचे भवन, अट्टालिकाएँ, बगीचा, कोठी, मिला, कारखाने, पार आदि सब साधन धन से प्राप्त हो सकते हैं । हीरे का हार, मणियों के आभूषण और सोने के गहने सब पैसे के खेल हैं । फिर पैसे से पैसा बढ़ता है । पैसे से नौकर-चाकर आदि रखकर मनुष्य सुखोपभोग कर सकता है । ये और ऐसे ही कुछ कारण हैं, जिससे अर्थ-सोम से प्रेरित होकर मनुष्य अधिकाधिक धनोपायन एवं धनसंग्रह में लगा रहता है ।

वास्तव में देखा जाए तो अर्थ के आधार पर जो मनुष्य की उच्चता और महत्ता का मूल्यांकन किया जाता है, वह बिल्कुल गलत है । भारतवर्ष स्वयं का पुत्रारी रहा है, वह गुणों का पूजक और प्रशंसक रहा है । यहाँ किसी को आदर-सम्मान उसके स्वयं, विनय, सेवा, विद्या, विवेक, सदाचार आदि गुणों पर से दिया जाता था, न कि केवल धन का ढेर देखकर । धन तो वैश्या, कर्मार्थ, धोर, डाकू आदि के पाम भी बहुत होता है, परन्तु समाज में उनका जीवन उच्च, उत्कृष्ट एवं प्रशंसनीय नहीं माना जाता । केवल धन के मात्र से मनुष्य की उच्चता एवं महत्ता को नापना गलत है । इसी चलन पैमाने के कारण समाज में अनेक अनर्थ पनप रहे हैं । पैसों के प्रकार धन बढ़ाने के लिए अनेक हथकण्डे किए जाते हैं । यही समाज और राष्ट्र के अध-पनन का कारण है ।

अर्थ-व्यवस्था या धनलिप्सा के कारण जहाँ व्यक्ति रात-दिन आतं-रोड़ ध्यान में विरा रहता हो, वहाँ धर्मरहित या धर्मघ्नता वहाँ रह सकता है ? जहाँ धर्म नहीं, वहाँ कौरे धन में सुख-शान्ति कैसे हो सकती है ? यही कारण है कि नीति, न्याय और धर्म के विवेक को निलंबित देकर जहाँ धन कमाया जाता है, वहाँ कालह, बनेश, धीर, ईर्ष्या, छीना-झपटी, शिन्ता आदि अनेक दुष्ट धन के साथ ही माय लग जाते हैं और धन कोई स्थायी रहने वाला नहीं है । यह सभी शास्त्र और अनुभव एक स्वर से पुकार कर कहते हैं । फिर अधिक धन बढ़ाकर धन के पीछे नौद हंगाम करने में क्या लाभ है ? क्या सुख है, जिस धन के पीछे अनेक अनर्थ और पार लगे



## होते मूढ़ नर कामपरायण

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

पिछले सूत्र में लुब्धजीवन की शांकी बताई गई थी। लोभी-मानव अर्थ के पीछे पड़कर अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर देता है। आज मैं गौनमकुलक के दूसरे सूत्र (यानी प्रथम गाथा के दूसरे खरण) में दी हुई मूढ़ जीवन की शांकी प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसमें बताया है कि किस प्रकार एकमात्र काम के पीछे पड़कर मानव अपने अमूल्य जीवन को बर्बाद कर देता है।

**काममूढ़ - जीवन की समग्र शक्ति का नाशक**

मूढ़ मनुष्य वह है, जो अपने हिताहित को नहीं समझता और मोह में पड़कर अपने जीवन की शक्तिशाली बनाने के बदले बर्बाद कर देता है। मनुष्य का शरीर एक शक्ति-उत्पादक शयनेमो की तरह है। इसमें निरय निरन्तर महत्वपूर्ण शक्तियों का उद्रेक होता रहता है। जब उन शक्तियों का अपस्यय रोककर उन्हें संप्रहीन कर लिया जाता है और उचित दिशा में लगा दिया जाता है तो महान् कार्य सम्पन्न होते हैं और जब हम शक्ति-उत्पादक शरीर को विषयभोगो या कामवासनाओ के छिद्रों में नष्ट कर दिया जाता है तो मनुष्य दीन-हीन, असहाय और परावनम्बी तथा पराधीन बन जाता है। अपना शक्तिग्रन् मुटा देने के बाद मनुष्य का शरीर खोया है, रीठा है। पाश्चात्य विचारक Channing (चेनिंग) ने ठीक ही कहा है—

“Sensuality is the grave of the soul.”

—काम भोगशक्ति आत्मा की कब्र है।

सबभुव मानव कामशक्ति को उचित दशा में मोड़ने के बजाय, उसका विपरीत दिशा में प्रयोग करके शरीर का सर्वनाश कर लेता है। कामशक्ति का उचित दिशा में उपयोग जीवन शक्ति का एक चिह्न है। इस शक्ति को मजिद रखकर उमका सतुपयोग करने से मनुष्य का जीवन प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनता है।

त्रिंशत्तमय राम-रावण युद्ध का प्रथम दौर शुरू हुआ, उस समय रावण ने अपने सर्वोच्च केनापति मेघनाद को ही सबसे पहले लहने भेजा। मेघनाद पर रावण



विद्वान् था, व्यापारी था, अनेक देशों में भ्रमण भी कर चुका था। अनेक घाटों का पानी पीकर ४० साल की उम्र में वह इस स्थिति पर पहुँच गया था कि अब जीवन में उम्रे जरा भी रस नहीं रहा। उसकी जिदपी रूखी, कटु, मनहूस और विपाक बन गई थी। प्रकृति ने उसे अच्छा शरीर दिया था, लेकिन उसने मार-सम्भाल न करके इतनी सापरवाही से अपना जीवन बिताया कि ४० वर्षों में तो उसके बाल पफेद हो गये थे। वृद्धावस्था के सभी चिह्न उसके शरीर पर दिखाई दे रहे थे। उसके अध्ययन और देशाटन से जो ज्ञान उपार्जित किया था, वह जीवन में सच्चा उपयोगी नहीं हो सका। उसका मन अपने स्वार्थी विचारों में इतना तल्लीन हो गया था कि उसने क्या खाया-पिया? कौन-से विषय का उपयोग किया? कब्र में कौन-सा खेल लेना? इनके सिवाय दूसरा कोई विचार उसके दिमाग में घुस नहीं सकता था?"

यह है विषयभोगी स्वार्थी जीवन का नीरस चित्र! यही तो मूड जीवन है, जो बेचन विषयभोगों की ओर दौड़ लगाकर अपने उत्कृष्ट एवं बहुमूल्य देवदुर्लभ मानव-जीवन को पशु-जीवन से भी गया-बीता बना लेता है।

### कामभोगों में कितना सुख, कितना दुःख ?

कामी जीवन का एकमात्र उद्देश्य इन्द्रियविषयो में सुख की कल्पना करके उसी में डूबे रहना है। जैसे कुत्ता भुँह में हडिडियाँ चबाता है, तब उसे बहुत ही सुख महसूस होता है, वह समझता है कि हड्डी में से रस आ रहा है। परन्तु उम मूड को यह पता नहीं होता कि वह रस तो चबाने समय उसके भुँह में निकले हुए खून का ही है, हड्डी का नहीं। इसी प्रकार इन्द्रियविषयी सांसारिक कामभोगों की वृष्टि में ही सगे रहते हैं। विषयास्वादन में उन्हें आनन्द आता है जिसका आभास वास्तव में उनके शरीर के निचुड़ जाने में उन्हें होता है। ऐसे लोग रात-दिन इसी उधेड़बुन में रहते हैं कि उनके कानों में सगीत की मधुर स्वर सहरियाँ पड़ें, उनके नाक में चारों ओर से मादक गुग्गुलु का ही प्रवेश हो, दुर्गन्ध का कहीं नामोनिशान न हो, उनकी जीभ गरम, स्वादिष्ट, चटपटे व्यञ्जनों का ही आस्वादन करती रहे, रूपवती मुन्दरियाँ उसने लिपटी रहें, उनकी आँसुओं के सामने निकं उत्तमोत्तम कामोत्तेजक दृश्य आने रहें। इन्हीं विषयों की वृष्टि में वह समार का मारा मुग्ध मानता है। परन्तु इन्द्रिय-विषयो का अधिकाधिक उपयोग क्या उसे आनन्द दे सकता है? क्या उसे विषयों का सहवास मुग्ध प्रदान कर सकता है? क्या वह नहीं। अगर विषय भोग में ही मुग्ध होना तो दुनिया में सबसे अधिक मुग्धी विषयासक्त होने। परन्तु आज दुनिया में सबसे अधिक दुःखी, अज्ञान एवं नीरस विषयभोगी कामी है। पाश्चात्य विचारक गेनेरा (Genoa) कहता है—

It sensuality were happiness beasts were happier than men  
 at human falsity is lodged in the soul not in the flesh.





कामसेवन या कामचिन्तन से शारीरिक थकावट, असक्ति, निराशा, चिन्तावृद्धि, व्याकुलता, शकानुता आदि के अकारण पैदा हो जाने से अत्यन्त दुःखित एवं त्रस्त हो जाना पड़ा। अधिक समय कामपरायण रहने वाले ऐसे डॉक्टरों को भी औरों की तरह 'न्युरे स्थेनिमा' का रोग हो गया। 'साइकॉलॉजी एण्ड मॉरल्स' नामक पुस्तक में मनोविज्ञानवेत्ता प्रो. हेडकील्ड ने लिखा है कि "स्वच्छन्द यौनाचरण (कामप्रवृत्ति) का परामर्श देना व्यक्ति को विनाश के मार्ग की ओर धकेलने की विधि है।"

इसलिए विषय सेवन जीवन का स्वाभाविक पक्ष नहीं है और न वह अनिवार्य ही है। मन में वासना उभरती है किन्तु आत्मारथी व्यक्ति करने जानबल एवं अन्तर्वल द्वारा उसका निग्रह कर लेता है। काम जीवन का दुर्बल पक्ष है, तथा बहुत नाजुक और मुद्दुल भी। अतः उसमें बचने के लिए अत्यन्त जागरूकता और सावधानी बरतना अपेक्षित होता है, प्रतिक्षण उसे अन्तर्मुखी रहना होता है। मूढ़ व्यक्ति इन बातों को नहीं समझते। वे कामसेवन में आनन्द मानकर उससे अधिकाधिक प्रवृत्त होते हैं। यौना यह होता है कि काम की प्रबल आसक्ति आत्मा को स्वभाव से विचलित बनाती है, जिसका परिणाम पाप के गर्त में अधिकाधिक डूबते जाना है।

काम का प्रचुर सेवन करके उससे सन्तृप्त होकर छोड़ देने की बात सोचना बुरा भूल है, घोसा है।

विषय के सेवन से कामान्नि अधिकाधिक उद्दीप्त होती है। जब काम के आवेग पहले बताये गये विविध रूपों में उठते हैं, तब उन्हें रोक सकना बड़ा कठिन कार्य है। काम विचार के आवेग वास्तव में उन पागल कुत्तों की तरह हैं, जो अपने को पालने वाले को ही बाट खाने हैं। इन पागल कुत्तों को न पालना ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है। जो जितना अधिक कामविचारों को पालता है या पपोलता है वह अपने जीवन में उतना ही अधिक विषवीज बोता है। वह मूढ़ है, जो सुरदुर्लभ मानव जीवन को कौड़ी के भाब मुटा देता है।

पुराणों में ययाति राजा का आख्यान आता है। ययाति राजा बड़ा बुद्धिमान था। मगर वह काम का बीड़ा था। वृद्ध हो गया, फिर भी उसकी काम सोचपता नहीं मिटी। वह बटुन ही तिग्र और उदास रहने लगा। कामान्नि ययाति ने अनेक बुद्धिमानों से उपाय पूछा। उन्होंने एक उपाय बताया—अगर कोई आरका बुझाया वय से ले और अपना जीवन आरको दे दे तो आप पुन युवा हो सकते हैं। रिता की श्रुति भोगाकाशा और सित्रना देमबर पुत्र ने उसे अपना यौवन दे दिया। कामान्नि राति फिर अदक रूप से कामसेवन करने लगा। उसकी इन्द्रियां क्षीण हो गयीं, प पीर होते पढ़ गए, फिर भी कामान्नि ययाति अनृण्य रहा। वह आचारांग मूढ़ शत्रुओं से अत्यन्त दुःखी हो गया—

"काम कामी क्षत्रु अर्थ पुरिते से सोयइ; बूरइ, तिप्पइ, परिनिप्पइ—जो अर्थ एव भोगान्थ होता है, वह भोग्य पदार्थ का बिवोध या रोग होने पर या



वहाँ से मरकर वह महाबल राजा के पुरोहित का पुत्र हुआ। जवान होने ही वह अत्यन्त गायन रसिक बन गया। एक दिन नगर में दूमो की एक सगीतमहली आई। राजा उनसे गीत सुन रहा था। राजा ने पुरोहित पुत्र से कहा—'सुनो नीद आ जाए तो इनका गीत बन्द करा देना। बाँड़ी ही देर में राजा की आँख लग गई, परन्तु गीतशास्त्र पुरोहित पुत्र ने गायन बन्द नहीं कराया।' कुछ ही देर बाद राजा एकदम चौक कर उठा, देखा तो गायन बन्दसूर खालू है। अब राजा के कोरावमान होकर पुरोहित पुत्र के कानों में गर्मोर्गमें तोचना हुआ तब इनका दिया। पुरोहित पुत्र असह्य वेदना से छटपटा कर वही मरण-भरण हो गया। यह है अचर्चा-त्रय की विषयासक्ति का नतीजा। श्रोत्रेन्द्रिय पर वर्तमान युग में बड़े-बड़े शहरो में बल कारखानों, माहनों या रेडियो बगीरह के होने वाले भयकर शोर में देवाव पड़ता है। कान के पर्दे फट जाते हैं। मस्तिष्क में उत्तेजना पैदा होती है। अपराध प्रोथ की, सुरीले मोहन शब्द कामराग भङ्गकाने है।

### रूप का आकर्षण कामासक्ति भङ्गकामता है

विक्रमपुर नगर का राजा विक्रममर, मन्त्री कुशलमति और नगर मेंठ मशोअर सीनो परम्पर मित्र थे। सीनों के एक-एक पुत्र हुआ। जब ये सीनो जवान हो गए, तब एक मन्त्री ने नगर मेंठ में कहा—'मित्र ! तुम्हारे पुत्र की दृष्टि में विकार है। वह राजदरबार में आने समय रान्ने में अन्तर पुर की महिलाओं के सामने ताक-नाक कर देना है, रान्ने खनता भी गर्दन उठाकर स्त्रियों के सामने देखता है। आगे चल कर यह ब्यारिषघ्ट हो जाएगा। अब इन ऐसा करने से रोकना।' नगर मेंठ ने आगे पुत्र की बहुत मसझाया, पर उसने एक न मानी। अपनी कुटुंब की छोड़ना नहीं था। एक दिन मेंठ के लडके को स्त्रियों के प्रति काम-राग दृष्टि से देखने हुए रोका और वहाँ से लपेट दिया, राजदरबार में उनका प्रवेश बन्द कर दिया। मन्त्री मोग अब उसे 'बपदाश' कहने लगे। एक दिन उसके पिता ने किसी ब्रह्मिक् पुत्र के माथ उसे परदेग भेजा, पर वहाँ भी वह सारे शहर में भटकना फिरता, नेत्रविकारवग हाथर कुए बावही, मरोबर आदि पर जाकर स्त्रियों को देखता रहता। एक दिन किसी प्रामाद के पायाण पर अचिन दिव्यरूप खानी पुनसी देखी तो मोहकम उन वर आगक हो गया। उनकी बाध में पाना पीना गब भूम गया। अब बन्धु ने वह पुनसी बड़ी छिया दी और कैसी ही कामपयी पुनसी बनावर उसे उड़ाकर हरे पर लाया। अब थेंप्ली पुत्र कुमार उसी पुनसी पर आसक होकर देखा, उसे सहने रहनाला। एक दिन बन्धिया और धेप्लीपुत्र दोनों वहाँ का व्यापार बन्द कर पुनसी सट्टिन आन नगर की ओर चल पडे। रान्ने में लुटेरोन उन्हें लुट लिया, गाथ में वह पुनसी भी ले गए। अब तो थेंप्लीपुत्र पुनसी के विदाग में बागव हाकर जगम में पूजने लगा। तिरना-तिरना वह विक्रमपुत्र आया। वहाँ के उदात में राजरानी को सेवक देग बाग बाग उसकी ओर देखने लगा। अब राजपुत्र ने उसे मार डाला। मरकर वह पुनसी हुआ। एक दिन आग में पट कर वह भस्म हो गया। जो अनेक जन्मों तक भटकता रहता।



एक जैन कथा है। एक राजा की आम राने का बहुत शौक था। आसक्तियों के अधिक छाने से उसे एक भयकर रोग हो गया। बहुत इलाज कराये, पर व्यर्थ; क्योंकि वह दवा के साथ-साथ आम साकर गुण्य करता रहता था। बचने की कोई आशा न रही। एक बार एक कुशल वैद्य आया, उसने आम न राने की बातें रली। राजा ने स्वीकार की। वैद्य ने उपचार किया, उससे राजा स्वस्थ हो गया। वैद्य ने चैतावनी देदी कि जरा-सा भी आम राना आपके लिए विपत्तुल्य है।" कुछ दिन तक तो राजा ने गुण्यसेवन नहीं किया। अतः वह स्वस्थ रहा। एक दिन वह भ्रमण करता-करता आसवन में पहुँच गया। पेड़ों पर चढ़े हुए पीने-पीने आम राजा ने देखे तो छाने के लिए भी सलचाया। सोचा—'अब तो मैं स्वस्थ हूँ। मित्रे एक आम राने से कुछ नहीं होगा।" अतः वह अपनी जेब पर नियन्त्रण न रख सका। आम खा ही लिया। फलतः बीमारी पुनः भडक उठी और उदरगूल के कारण राजा की सत्त्वान मृत्यु हो गई।

रोगी दशा में ही नहीं, स्वस्थ दशा में भी विभिन्न रसों-तीषे, कड़वे, खट्टे, भीटे, बर्गने घरघरे आदि का भी विभिन्न प्रकार का परिणाम होता है। अधिक मीठा शाना मधुमेह आदि रोगों का कारण होता है, अधिक खट्टा भी शरीर के लिए हानि कारक है, इससे एसिडिटी (अम्लता) बढ़ जाती है, जिससे हार्ड इनडिजेशन हो जाता है। बर्फ, रेफ्रिजरेटर या आइसशीम का ठन्डा पानी भी पाचन क्रिया को अत्यन्त कमजोर कर देता है। अधिक खट्टाई आँसो के लिए नुकसानदेह है। एक बामक भी आँसु चुलने आँसु। उसे बच्चे आम का अधिक शौक था। इलाज होने पर आँसु कुछ ठीक हो गई। लेकिन मोबा पाते ही आँसु बचा कर घर से निकल पड़ा। बाग में जाकर उसने बच्चा आम खा लिया। फलतः आँसो की बीमारी बड़े जोर से उभर आई। बट्टेरे इलाज कराए, लेकिन आँसु बिलकुल ठीक न हो सकी। अपनी स्वाद-सोनुपता का दण्ड उसे नेत्रग्योति-बिहोन होकर चुकाना पड़ा।

आप बचकप्रद्योत की कामसोनुपता की साधन कहानी सुन चुके हैं। इन सम्बन्ध में और अधिक बहने की आवश्यकता में नहीं समझता। इतना ही बहूँगा कि आप बामभोगों में आसक्त होकर अपने आपकी झुँडे की धणता में न गिराएँ, जब भी बाम भोगों के सुभाबने प्रसंग आए आप अपने आँसु बचा कर बुद्धिमत्ता का परिचय दें।



वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि में हिनाहिन एवं परिणाम का विचार करता है तो यह स्वाभाविक है कि वह विरोधी विचार-धारा या घातक क्रिया को देखकर सहने नहीं, प्रतिकूल परिस्थितियों में पहराये नहीं, किसी व्यक्ति द्वारा विरोध, प्रहार या भासोगलौक क्रिये जाने पर भी शान्तभाव से सहन करे, धर्मपालन करते समय अनेक प्रकार के कष्ट या दुःख आ पड़ने पर भी धैर्य से सहन करे। किसी के प्रति कोई गलती या अपराध हो गया हो तो क्षमायाचना करे। बुद्धिमान की इन सब वृत्ति प्रवृत्तियों को देखते हुए निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि वह क्षान्ति-परायण होता है। क्षान्ति-धारा उसके जीवन के कण-कण में रम जाती है, उसकी श्रद्धा, वृत्ति या प्रवृत्ति स्वाभाविकरूप से क्षान्ति के प्रति होती है। क्षान्ति बुद्धिमान के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाती है। वह किसी भी परिस्थिति में अपने आप से बाहर नहीं होता, न वह अपने स्वाभाविक गुणों को छोड़ती है। इसलिए गौतमकुलक में कहा गया है—'बुद्धा नरा संतिपरा ह्वन्ति।'

### क्षान्ति और धर्म का अन्वयोप्याधय सम्बन्ध

क्षान्ति के मुख्यतया तीन अर्थ फलित होते हैं—(१) सहिष्णुता, (२) सहन-शीलता और (३) क्षमा। धर्म तथा सहन करने के अर्थ में है। इसी में ये तीनों अर्थ सम्मिलित हैं। धर्म में क्षान्ति के ये तीनों अर्थ समाविष्ट होने हैं। अहिंसा धर्म है और वह विरोध या हिंसा करने में नहीं है, और क्षान्ति में भी विरोधी या उपकारी की बात को मुन या पढ़कर उत्तेजित न होना, सहन करना, प्रहार आशय, आदि में प्रतीकार न करना होता है। इसके अनिर्दिष्ट धर्म में त्याग, नियम, धन आदि का पालन करने में अनेक कष्ट या विघ्न आने पर उन्हें सामभाव से सहना पड़ना है, धैर्य से परिस्थिति का सामना करना पड़ना है समय रक्षना पड़ना है, क्षान्ति में भी यही बात है। इसलिए धर्म के बदले क्षान्ति शब्द का प्रयोग कर दें तो कोई आपत्ति नहीं। धर्म में अपने हृत् अपराधो, गलतियों और भूलों के लिए दूसरों से क्षमायाचना करके आत्मबुद्धि करना आवश्यक होता है साथ ही दूसरे अपनी गलतियों पर अपराध के लिए क्षमा माँगें तो हृत् में क्षमादान करना भी जरूरी होता है, क्षान्ति में भी ये दोनों तत्त्व आ जाते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि क्षान्ति और धर्म का अन्वयोप्याधय सम्बन्ध है। क्षान्ति के बिना धर्म टिक नहीं सकता और धर्मपालन के बिना क्षान्ति जीवन में आ नहीं सकती। इसलिए महर्षि गौतम ने धर्म के सन्धि रूप को अहिंस्यक करने वाले क्षान्ति (गति) शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया है। वास्तव में क्षान्ति शब्द यही धर्मपुरणार्थ का ही संज्ञक है।

### सहिष्णुता बुद्धिमान का विशिष्टगुण

क्षान्ति का सबसे उपयुक्त अर्थ सहिष्णुता है। यह बुद्धिमान अनुपपन्न का एक विशिष्ट गुण है। पशु स्वभाव में ही अगहनशील होते हैं। उनमें अपने विनाश दूसरों के हिन-अहित को चिन्ता या विवशशीलता नहीं होती। अनुपपन्न में भी एक पशुता





ईश्वर के रूप में नहीं मानना, पर वह अग्नि के रूप में तो मानना ही है। मैंने गव कुष्ठ सहा, परन्तु तुम एक दिन भी न सह सके। उतने न तो तुम्हारा अरमान किया था, न तुम्हें किसी प्रकार का दुःख दिया था। फिर तुमने उनके साथ मानवता को भी तिलोत्तमि देकर अभयता का व्यवहार क्यों किया?" यह कह कर भगवान उस दीन-हीन व्यक्ति की छोज-सबर लेने वहाँ से चल दिये।

उदारता से परयर भी पिघल जाता है

पारचात्य विद्वान Home (हॉम) कहता है—

"The truly generous is the truly wise, and he who loves not others, lives unblest."

"वास्तविक उदार व्यक्ति ही सच्चा बुद्धिमान है, जो दूसरों से प्रेम नहीं रखता, वह दूसरों के आशीर्वाद से वंचित रहता है।"

अकबर बादशाह बीर दुर्गादास को बहुत चाहता था। अकबर की मृत्यु के बाद उदार एवं बीर दुर्गादास राठौर के यहाँ उसकी माँग पर उसकी शाहजादी तथा गहनादे चले गये थे। दुर्गादास चाहता तो औरगजेब द्वारा जीने हुए उसके जानीर परपने को सौंपने के बदले अकबर की सन्तानों को मौरता। मगर उसने उदारतापूर्वक उन्हें सौंप दिया। जब वे औरगजेब के पास आये तो उसने अपने पौत्र-पौत्रियों को प्रेम से पुकारते हुए कहा—बेटो! तुमने राठौर के यहाँ बहुत ही कष्ट सहे होंगे। फिर तुम्हारा पानन-भोग हिन्दू-संस्कृति में हुआ है, इसलिए मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं तुम्हें इस्लाम धर्म की तालीम दिलाऊँ। कल से ही एक मुंशी को मैं नियुक्त कर देता हूँ, जो तुम्हें मजहबी तालीम देगा। इन पर अकबर की बड़ी शाहजादी ने कहा—अम्ब्राजान! आप अभी तक दुर्गादास काका को पहचान नहीं पाये। वे मेरे कालिद को अपना भाईजान मानते थे। उन्होंने हमें इस्लाम धर्म की तालीम दिलाने का सारा प्रबन्ध एक तुर्की महिला को रखकर जोधपुर से ही कर दिया था। समय-समय पर वे स्वयं भी आकर हमारे पास बैठते और जाँच भी करते थे कि हमारी पढ़ाई ठीक तरह से हो रही है या नहीं?"

यह सुनकर अरबवंशजिष्ठ होकर औरगजेब बोला—बेटा! क्या कहती हो? एक हिन्दू राजपूत ने तुम्हारे लिए अरबी भाषा पढ़ाने का इन्तजाम किया, कुराने-शरीफ की तालीम दिलाई? फिर एक तुर्की महिला को रख कर? मेरा मन यह मानने को तैयार नहीं होता।

शाहजादी सविनय बोली—“यह तो प्रत्यक्ष है, अम्ब्राजान! और फिर उन्होंने तो हमें बिना किसी कर्त्त के आपकी सौंप दिये! यह क्या काम उदारता है?” यों कह कर शाहजादी ने जब कुरानेशरीफ की आयतें बोलीं, तब तो बादशाह का हृदय दुर्गादास की उदारता के प्रति हिल उठा। पीरन ही औरगजेब ने अहमदाबाद के सूबेदार पर एक पत्रमवार के साथ एक सन्देश लिख कर भेजा—शाही सन्तानों



यह असहिष्णुता सिर्फ अपने ही दृष्टिकोण को यथार्थ मानने, अपना मन, पंथ, अपने प्रियजन या अपनी विचारधारा ही ध्येष्ठ और दूसरों के दृष्टिकोण, मन, पंथ, प्रियजन एवं विचारधारा को निरृष्ट मानने की शूद्रता, मकीपंता एवं मूडना को उभारती है। यह सामाजिक विद्रोह की भावना बगानी है, एक ओर असहिष्णुता घृणा को जन्म देती है तो दूसरी ओर ध्येष्ठता का दम्भ पनपाने है। दूसरे का विचार, व्यवहार हीनकोटि का सपने लगना है और उसे मिटा देने की भावना उभरने लगती है। यह शूद्र अहं की पराकाष्ठा ही है।

आज हमी असहिष्णुता के कारण परिवार, समाज, जाति, संख्या, सगठन एवं मंडल में संपर्क, व्यापक बन्ध, कूट, द्वेष, ईर्ष्या, इनबन्दी एवं घृणा पनर रही है। जिससे न केवल वैयक्तिक तथा पारिवारिक जीवन ही डिग्न-भिन्न और अशान्त बना हुआ है, बल्कि राष्ट्रीय जीवन भी लथ्ठ लथ्ठ हो रहा है। कुछ लोग किसी सांस्कृतिक विषय पर बार्तावाप करने-करते निजी प्रसंगों पर आ जाते हैं और फिर असहिष्णु होकर परस्पर बृद्ध आक्षेप करने लगते हैं, तथा व्यक्तिगत बुराई पर उतर आते हैं। अपनी मर्जी के विनाश करानी बात चुनकर भडक उठते हैं। यह असहिष्णुता मान-सिद्ध दुर्बलता ही मानी जाएगी। इसके कारण समाजों की बातचीत, सद्भावना-पूर्वक बहस या शय के द्वार तक पहुँच पाना सम्भव नहीं होता। असहिष्णु व्यक्ति के व्यवहार से लोगों में यह भावना घर कर जाती है कि यह अपने को अडबड़कर देवता है, तथा स्वयं की ध्येष्ठता की शींग हांक कर उसकी ओट में हमारा निरादर करना चाहता है। असहिष्णु व्यक्ति के प्रति प्रतिपक्षी की प्रवृत्ति प्रायः प्रतिकोशलामिती ही जाती है। वह उसके असहिष्णु व्यवहार से दुःखी होकर उस व्यक्ति के साथ भी दुःखद व्यवहार करने बढना सेने की योजना बनाने लगता है। प्रतिक्रिया में असहिष्णुताजन्म उद्वेग बढ़ना ही जाता है। तथा विद्रोह की बृष्टकारक एवं हानि-कारक परम्परा बढ़ने लगती है। परिणाम में सन्नाप और अशान्ति ही पल्ले पड़ती है।

हिततर यहूदियों के प्रति इनका अधिक असहिष्णु बन गया था कि उनमें उनका भयकर उत्पीडन और मुर्गस नामूर्हिक बध किया। मुसलमानों और ईसाइयों में भायबाल में मूतिपूजन के प्रति ऐसी असहिष्णुता बढ़ी कि उन्होंने इनके लिए रक्तपात से लेकर सूटपाट तक की बुर मतिविधियों को अपनाया।

यह निश्चित है कि जिसके प्रति व्यक्ति असहिष्णु होता है, उसके द्विर उस असहिष्णु व्यक्ति का अस्तिव सहन नहीं होता। फलतः बन्ध, लथ्ठ और विनाश की विधि चलाने होती है।

इसीलिए एक पाश्चात्य साहित्यकार Shelly (शेली) ने असहिष्णु होना घोर अपराध बताया है—

"It is not a merit to tolerate, but rather a Crime to be intolerant." १



“न सोऽप्रपि धर्मो मनोऽधर्मो निवेगयेत् ।  
अधार्मिकाणां पापानामाद्यु परयन् विपर्ययम् ॥

अधर्म करने वाले पापियों को सुनी, धनी और धार्मिकों को दुखी और निग्रह देखकर भी अधर्म में मन नहीं लगना चाहिए ।

कमजोर नींव का सुन्दर महल

एक महल की दीवारें बहुत मजबूत हैं, उस पर बहुत ही सुन्दर राग-रोगन बिया हुआ है, उसमें फर्नीचर सजा हुआ है प्रतिदिन महफिज जमती है, किन्तु उसकी नींव बच्ची है, बालू पर टिकी हुई है तो भला बनाए वह सुन्दर महल कितने दिनों तक टिका रह सकेगा ? वह एक आँधी का झोका आते ही धराशायी हो जाएगा । इसी प्रकार हमारे जीवन महल की धनमण्डपति रूपी दीवारें बहुत सुदृढ़ हों, उसमें विषय सुखों की खूब ही रँगरेलियाँ होनी हों । आग भी रागराग में खूब मशगूल रहने हो, परन्तु उस जीवन महल की धर्मरूपी नींव कमजोर हो, कमजोर क्या बिल-कुल ही बच्ची हो, केवल दिखावे का श्रियावाण्ट हो, अन्दर पोलमपोल हो तो बना-इए धर्म की सुन्दर नींव में रहित आपका वह जीवन महल कितने दिन टिकेगा ? आग जगमें कितने दिन आनन्द मना सके ? आपका अर्थ का ढाँचा चरमराते ही और काम के माधुर्यप मरीर, दृष्टियाँ, अगोपाग आदि दीने पढ़ने ही क्या आपका जीवन दुःख और अज्ञान से परिपूर्ण नहीं हो जाएगा ? और अकाल में ही बचपनात या धरका आपकी नहीं मरेगा ? सबकुछ धर्मविहीन जीवन की दशा यही है । धर्म-विहीन जीवन या तो धर्म के पीछे दीवाना होकर लोभी और कज्जुम बन जाता है, या फिर कामवागना के चक्कर में पड़कर विषय-लक्ष्य बन जाता है । दोनों ही प्रकार के धर्महीन जीवन बर्बादी के रास्ते पर दौड़ लगाने लगते हैं । उगका जीवन ऐसा पोंहा बन जाता है, जिसके कोई लगाम नहीं है । ऐसा पोंहा मकार को या तो ऊँच रास्ते में ले जाकर मटका देता है या उसे नीचे गिराकर उसकी हड्डी-पत्ती चूर-चूर कर देता है । ये दोनों ही परिणाम धर्म के अकुश में रहित अर्थ और काम का संवदन करने वाले के जीवन में दृष्टिगोचर होने हैं ।

धर्म का पतड़ा अर्थ-काम से भारी हो

धर्म का पतड़ा अर्थ-काम के पतड़े में बहनदार हो, तभी जीवन सुख शान्ति-मय हो सकता है । आने देना होगा, धर्म के अनुशासन में रोटी मारने में ही शान्ति होती है, नींव की महारत के अनुसार ही मजान बनाया जाता है, रोग ब रोग के हिगाव से ही दवा की माया ही जाती है, आय के अनुसार ही व्यय किया जाता है टकी की उँचारी के अनुरूप ही जम उँचा बड़ाया जाता है, दली प्रकार अर्थ-काम की माया के अनुशासन में धर्म की माया हो या धर्म का पतड़ा भारी हो, तभी आराम का विकास स्वाभाविकरूप में हो सकेगा ।



सागनाबी पर बम वर्षा करके विज्ञान ने असंख्य प्राणियों का संहार कर दिया, हत्या का कारण है—धर्म के नियन्त्रण से बाहर हो जाना। अगर विज्ञान पर धर्म का अंकुश रहे तो संहार में स्वयं उतर सकता है।

**सुरक्षा और सुख शान्ति : अर्थ काम से या धर्म से ?**

प्रत्येक व्यक्ति की सुख शान्तिपूर्वक जीने की इच्छा होती है। हममें दो तत्त्व मिश्रित हैं— एक जीना और दूसरा है—सुख-शान्ति प्राप्त करना। जीने का मतलब है—अपने अस्तित्व की रक्षा करना और सुख-शान्ति का मतलब है—अपनी अभिसायाओं और कामनाओं की पूर्ति करना। इन दोनों तत्वों की पूर्ति के लिए साधारण अदूरदर्शी मानव दो चीजें अपनाता रहा है। वे हैं—अर्थ और काम। वह सोचता है—अर्थ होगा तो मेरी त्रिदयी की रक्षा हो सकेगी, और काम होगा तो—मुझे सुख शान्ति मिलेगी। परन्तु गम्भीरता में विचार करने पर ये दोनों ही पुरुषार्थ—अर्थ और काम आगे चलकर मनुष्य को धोखा देते हैं। आराम देह जीवन की सुविधाएँ सुख-शान्ति का कारण नहीं हैं, अर्थ से शान्ति प्राप्त होने की बात विवेकहीन सोचता है; बल्कि निर्विघ्न तथा निरुद्ध जीवन प्रवाह ही सुख शान्ति का हेतु है, जिसका कारण धर्म है। इसके विपरीत जो व्यक्ति उद्वेगपूर्ण, चिन्तायुक्त एवं अस्वाभाविक जीवन पान करता है, वह दुःखी तथा अशान्त रहता है। विविध प्रकार के कष्ट एवं क्लेश उसे घेरे रहते हैं। ऐसा व्यक्ति एक धाग के सुखचैन के लिए तरसता है। कभी उसे कारीरिक व्याधिर्षा सताती है तो कभी वह मानसिक क्लेशों से पीड़ित रहता है।

एक बार भारतधर्म के एक घनाइय व्यक्ति मुझे मिले। वे कुछ ही अर्से पहले अपनी सा से काफी पैसा कमा कर लौटे थे। उनकी बातचीत से मुझे लगा कि वे अशान्त और दुःखी हैं। मैं उनके दुःख का कारण भांप नहीं सका, इसलिए पूछा— "तेरा जो ! आप तो अपनी सा से बहुत अच्छी कमाई करके आए हैं, फिर यों निराश क्यों दिखाई दे रहे हैं ?"

उन्होंने कहा—बेशक, महाराजधो ! मैं बहुत अच्छी कमाई करके आया हूँ। परन्तु घन का डेर होने मात्र से थोड़े ही सुखशान्ति मिल जाती है ? पैसों से सुख सुविधा के साधन जुटाए जा सकते हैं, अच्छा खाया-पीया जा सकता है, परन्तु सुख तो लक्ष मित्रता है, जब मन में शान्ति हो, शरीर और मन स्वस्थ हो, घर का साधारण सुलभता हो, इसलिए मेरी तो यह धारणा पक्की बन गई है कि घन से—वेकन घन से सुखशान्ति नहीं मिल सकती।"

मैंने कहा—"शोक तो पैसों के पीछे दाना दूर-दूर भागने विरत है, पैसों को परमेश्वर से भी बड़बुर महसूस देने है, ऐसा क्यों ?"

अपने हृदय की भाव विचारों हुए वे बोले—अजी महाराज ! इस पैसों के लोभ और शान्ति के बढ़ने दुःख और आपन खड़ी कर दी है। जब मेरे पास पैसा नहीं





ऋषयश्चाहृविरोष्येय न च वरिचकृणोति माम् ।

धर्मादर्थरचकामरच स धर्मः किं न सेव्यते ?”

मैं भुजा उठाकर चिल्ला रहा हूँ, परन्तु मेरी बात कोई भी नहीं सुनता। धर्म में ही अर्थ और धाम की प्राप्ति होती है। अतः उम उम धर्म का आवरण क्यों नहीं करते ?”

मिडाम बहुत ही घनत्वोन्मुद था। उमने मन में यह छानि दृढ़ हो गई कि मुझ धर्म में नहीं, धन में रहता है। अतः उमने अपने इष्टदेव को प्रगल्भ करके वरदान माँग लिया कि 'वह जिस वस्तु को छुट्ट वही सोने में बदल जाए। यह सुन होकर घर आया। आने ही अपने मकान, पत्नी और पोगाक को छुट्ट सोने का बना लिया। मन ही मन मुस होने लगा कि अद तो पारो और मुस ही मुस है। कुछ देर बाद उसे भूग लगी। भोजन की पाली दूते ही सोने की बन गई और जो भी खाने की चीजें थीं, वे सब सोने की हो गईं, पानी को छुआ तो वह भी सोने का हो गया। बहा परेगान हो गया वह। आखिर भूग-प्याम को वहाँ तक बर्दास्त करना। सोने की रोटी और मुनहरा पानी खाने पीने के क्या काम आ सकता था ? आखिर परेगान होकर उमने फिर इष्टदेव से प्रार्थना की कि अपना वरदान वापस ले लो। मैं त्रिम स्थिति में था, उसी में सुखी था। मैं अब समझ गया कि कोरे धन में मुझ नहीं मिल सकता।”

हाँ तो मैं कह रहा था कि कोरे अर्थ से, या धर्मरहित अर्थ से सुखशान्ति का प्रग्न हन नहीं हो सकता। जो बेचैन है, अगन्त है पीड़ित है वह धमा धाम-मुस कैसे पा सकेगा ? उसे घर में इन्द्रियों के सभी विषय सामथी होने हुए भी वे जाने सौप-से सवेंगे। परिस्थिति, सयोग या भाग्य में यदि किसी को धन-सम्पत्तना प्राप्त भी हो गई तो धर्म की बर्माई न होने के कारण या उम अर्थ का धर्म-भाय में व्यय न होने के कारण वेचन इष्टता से धन पर साँस की तरह कूडनी मार कर बैठ जाने से क्या सुखशान्ति मिलेगी ? न तो वह उस धन से सुखशान्ति प्राप्त कर सकेगा, न ही उमका उपयोग कर सकेगा।

ऐसे धन में मानव-जीवन की सुरक्षा का स्वप्न भी कैसे पूरा होगा ?

एक सेठ अग्यन्त इष्टता था। उमने बहुत धन जोड़-जोड़ कर तिजोरी में एकट्टा कर लिया था। न तो स्वयं उस धन का उपयोग कर सकता था, न वह किसी अरुणतमन्द को देता था, न किसी सेवाकार्य में व्यय करता था। बरिच गरीबों को उँके श्यात्र पर पैना देता और उममें भी बेईमानी में एक शून्य बड़ाकर वगुल करता था। इतना हृदयहीन इष्टता सेठ एक दिन बड़ी तिजोरी में बैठे मोट गिन रहा था, धन देखकर वह प्रमत्त हो रहा था, परन्तु अचानक बाहर में किसी व्यक्ति को जाने देख उसने तिजोरी का दरवाजा बंद कर लिया। संध्याकाल वह तिजोरी बंद हो जाने के बाद बाहर से ही सुनती थी, अन्दर से नहीं। अतः सेठ तिजोरी खोल न



ये कि दूमरे दम के सी डाकू और मिले और उन्होंने इन ५० डाकूओं को पकड़ लिया। पकड़े हुए डाकूओं ने उस शाहज से अपनी तरह धन प्राप्त करने को कहा। परन्तु धन बरसाने का संभवयोग निबल चुका था अतः वह सफल न हुआ, इससे गुड़ डाकूओं ने उसे मार डाला। ५० डाकूओं का सफाया करके उनका धन छीन लिया। आगे चलकर प्रचुर धन के लोभवश उन डाकूओं में दलबंदी हुई। गुड़ छिड़ा ज़िममें दो को छोड़ शेष ६८ डाकू मारे गये। धन समेट कर उन्होंने छाडी में छिपा दिया। ताने पीने की सजबीज में एक डाकू चावल बनाने लगा। दूसरा शीच आदि से निबल होने गया लोभवश उमने चावल में जहर मिला दिया। शीच जाकर आते ही दूमरे ने उस पर तलवार से प्रहार किया। वह मर गया। दूर डाकू ने जब जहरीले चावल खाये तो वह भी बोधी देर में मर गया। इस पर तपागत ने अपने प्रवचन में अपने शिष्यों से कहा—अनुचित रीति से धन कमाने और अनुपयुक्त मार्ग से उप्रति की बात सोचने वाले व्यक्ति लाभ नहीं, हानि ही उठाते हैं। अपने माप औरों की भी से दूबते हैं।”

इसी प्रकार कामान्ध व्यक्ति भी धर्म-मर्यादा को नहीं देखता, वह भी येन-येन प्रकारेण अपनी कामवासना को तृप्त करना ही अपना सद्य समझता है। परन्तु उमने कितनी हानि होती है? यह वह नहीं सोचता। शक्ति काममुख अनेक घोर दुर्घों को बुना लेता है।

कृपाल या तो सम्राट अशोक का ही पुत्र—अपने पति की ही सन्तान; परन्तु सौमिया माता तिप्परक्षिता ने कृपाल को अपने कामजाल में फँसाने का प्रयत्न किया। कृपाल ने कहा—‘माँ! पुत्र के प्रति ऐसी अनुचित भावना?’ बस, मागिन की तरह फुफकार उठी वह, बदमा सेने की टान बैठी। कृपाल को विद्रोह मान्त करने के लिए महारानी के कहने में सम्राट ने तदगिला भेज दिया। विद्रोह शान्त हो जाने पर अम्बस्य सम्राट की राजमुद्रा लगाकर उनकी कृपापात्र बुटिल तिप्परक्षिता ने तदगिला के अमात्य के नाम पत्र में लिखा—‘कृपालः अन्धीयताम्’। अन्धीयताम् के आदेश अनुसार कृपाल की आँसों फोड़ डाली गई। बाद में जब सम्राट को पता चला तो उन्होंने रानी को बठोर दण्ड मुनाया। परन्तु कृपाल के बहानुनी करने से माफ कर दिया मगर तिप्परक्षिता सम्राट अशोक के मन में कृपापात्र हो गई।

यह है धर्मरहित काम का दुःपरिणाम! हमने अमंन्य नरत्तरिषों का जीवन बर्बाद कर दिया। हमलिए यह निबिबाच है कि धर्म-मर्यादारहित धर्म और काम में कभी मृष्टशान्ति नहीं मिल सकती। धर्म के बिना अर्थ और काम एक अरु के बिना शून्य की तरह हैं। उनका कोई पारमादिक मून्य नहीं है।

परन्तु अपसोग तो यह है कि वर्तमानयुग का मानव धर्म पर निष्ठा लीपा जा रहा है, या तो उमकी निष्ठा अर्थ पर है या सामाजिक विषय-शुभोगमोच पर। एक पारबाय सेवक Cecil (मिसिल) ने इस पर अपनी प्रतिबिधा व्यक्त की है—



था, बोन अनिय या माधु धर मे आता है, उनके प्रति क्या बर्तव्य है ? माधु रसोई धर मे गया। उम गूरुधर की पुत्रवधू बड़ी धार्मिक थीं उसने बड़ी भावभक्ति से सनन को मिशा दी। साथ ही सनन का दम छोटी-उम्र मे वैराग्य देकर उमने पूछा— 'मुनिवर ! अभी तो सवेरा है।' मुनिवर ने कहा—“बहन ! काल का पता नहीं था।” बूढ़ा ! जो अथ तब अपने त्रिगाय जितान मे मग्न था, चौकशा होकर दोनों का वार्तानाय सुनने लगा। यह प्रश्नोत्तर सुनकर मन ही मन सोचने लगा—ऐसी भूर्ग पुत्रवधू है और ऐसा ही भूर्ग यह सन्त है। दोगहर होने आया है, फिर भी दोनों को समय का पता नहीं है, आश्चर्य है।

मुनिवर ने बहन को धार्मिक समझ कर पूछा—“बहन ! तुम्हारे धर का क्या आचार है ?” यह बोली—“हम तो ब्राह्मी भोजन करते है ? यह सुनकर बूढ़ा अच्यन्त सोच उठा ! ओह, बितना झूठ ? हमारे धर की बधनामी करती है यह तो ! मुनि ने पूछा—“बहन ! तुम्हारे पति की उम्र कितनी है ? तुम्हारे पुत्र की एव तुम्हारे स्वमुर की कितनी उम्र है ? और तुम्हारी आयु कितनी है ?”

उमने कहा—“मेरे पति की उम्र चार बर्ष की है, पुत्र की बारह बर्ष की है, मेरे स्वमुर तो अभी पासने मे झूल रहे है और मैं बीस बर्ष की हूँ।” यह सुनते ही स्वमुर एबदम बोधायमान हो गए। कितनी गप्प हाबती है यह ?” मुनिवर तो यो बहकर बने गए। बूढ़ा एबदम सन कर आया और पुत्रवधू से पूछने लगा—“तुम दोनों क्या अटपटी बातें कर रहे थे ? तुमने ब्राह्मी भोजन के तथा उम्र के विषय मे जो अटमट गप्पे हाकी है उनका क्या अर्थ है ?” पुत्रवधू ने अच्यन्त नम्रता से कहा—“गिताजी ! आपकी इन बातों का रहस्य समझना हो तो गुह महाराज के पास पधार जाइए। मैं आपसे बहुत बर्ष, यह छोटे मूह, बड़ी बात होगी।”

बूढ़ा सेठ हीछा उपाध्यय मे पढ़ाया और युवक सत के गुह से विवाद करने लगा। मुनिवर ने उन युवक मुनि को बुलाकर पूछा—ये सेठ, जो कुछ कह रहे है, उसका समाधान करो। युवक सत ने कहा—तुम्हारी पुत्रवधू बहुत गुणवती एव धार्मिक है। उसने जीवन मे वैराग्य देखकर मुझमे पूछा था—अभी तो बहुत ही छोटी उम्र है, इस उम्र मे यह वैराग्य कैसे ? मैंने उसका उत्तर दिया था कि काल का पता नहीं, तब आ धमके, इसनिगू मैंने यह वैराग्य लिया है। फिर मैंने धर के आचार के विषय मे पूछा तो उमने कहा—यहाँ तो सब ब्राह्मी खाते है। ब्राह्मी खाने का मनसब है—पूर्वजन्म की जो धर्म-बर्माई है उसी को अभी तब खा रहे है, नई कोई धर्म बर्माई अभी नहीं कर रहे है, फिर मैंने उम्र के बारे मे पूछा था। उम्र की वास्तविक शुरुआत सभी मानी जाती है, जब धर्माचरण का जीवन मे थीगणेश हूँ। आपकी पुत्रवधू ने जो बताया उसका रहस्य यही है कि मेरे पति ४ बर्ष से धर्माचरण मे लगे है, पुत्र १२ बर्ष मे लगे है, स्वयं बीस बर्ष से लगी हुई है, और आपके लिए कहा कि स्वमुरजी तो अभी धर्म-ध्यान मे लगे ही नहीं है। अभी तो वे अर्थ-काम के पासने मे



‘धर्मों रक्षति रक्षितः’ सूत्र याद रखें

क्या आप भारतीय संस्कृति का वह सूत्र भूल गए ? जिनमे कहा गया है—  
धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः

जो धर्म का नाश कर देता है, धर्म उसे नष्ट कर देता है; किन्तु जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।  
सालो वर्षों का अनुभव यह सिखाता है कि धर्म की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है।

एक प्राचीन उदाहरण लीजिए—

विजयपुर नगर के धनपेठी जब भीतराग धर्म के सम्मुख हुआ, तब उसकी तली धनपेठी के गर्म रहा। पुन जन्म होने पर धूमधाम से जन्ममहोत्सव किया। पुन नाम रखा जिनचन्द्र। धर्मसंस्कारी जिनचन्द्र युवक एक दिन अपने मित्र के साथ ग रहा था, तभी किसी हितैषी पुरुष ने नीतिशास्त्र की एक बात कही—‘सोतह का होने पर जो लड़का अपने पिता की कमाई हुई सम्पत्ति का उपभोग करता है, पिता का कर्जदार हो जाता है।’ अतः इस पर दीर्घमुष्टि से विचार कर जिनचन्द्र ने भाग्य को अज्ञमाने के लिए सिर्फ पहने हुए वस्त्रों के सिवाय और कुछ न लेकर जा जाने के लिए घर से चल पड़ा। अनेक गाँवों, नगरों और जंगलों को पार करके वह समुद्र के किनारे आया। वहाँ एक पथिक आया, उसके मुँह से समुद्र की निन्दा सुनकर धर्मसंस्कारी गुणघाही जिनचन्द्र ने उसे कहा—‘माई ! समुद्र में अनेक गुण हैं। वह रत्नों का भण्डार है, गम्भीर है, मर्यादावान् है।’ समुद्र के गुणगान सुन-र उम समुद्र के अधिष्ठापक देव ने प्रसन्न होकर जिनचन्द्र को एक-एक करोड़ मूल्य पाँच रत्न दिये। रत्न पाकर जिनचन्द्र किसी के जहाज में बैठकर तारादीप पहुँचा। तारापुर के उद्यान में देवरमण नामक यश के देवालय में उसने पड़ाव डाला।  
उही देर बाद उम उद्यान में चार कुमारियाँ त्रीडा करने आईं। उनमें एक थी—  
भुवनेश्वर राजा की पुत्री रूपरेखा, दूसरी भुवनतिलक मंत्री की पुत्री रूपनिधि। तीसरी भुवनमुन्दर साधुबाह की पुत्री रूपरीति थी, और चौथी भुवनचन्द्र सेठ की पुत्री रूपकला थी। चारों परस्पर सहेली थी। चारों ने एक दिन राजमहल में बैठे-बैठे ऐसी मन्त्रणा कर ली थी कि हम चारों का एक दूसरे से वियोग न हो इसलिए हम चारों एक ही पति का वरण करेंगी। अपना यह मनोरथ पूर्ण हो, इसके लिए हम उद्यान के देवालय के यश में प्रार्थना करें।’ इसी विचार में आज के चारों मिल कर आई थी। परन्तु यश के देवालय में प्रवेश करते ही चारों ने स्फूर्ति जिनचन्द्र को देखा। विस्मय विमुग्ध होकर चारों ने अपने हृदय में जिनचन्द्र को धारण करने की प्रार्थना की। जिनचन्द्र भी इन चारों के रूप, सौभाग्य और आचर्य को देख प्रसन्न हुआ, परन्तु धर्ममर्यादा के अनुगार जब तक विधिवन् पाणिग्रहण न हो जाए, तब तक किसी प्रकार की ऐसी बातचीत करना नीतिधर्म विरुद्ध ही मानकर चुप रहा।





पहुँचा दिया और एक चिन्तामणि रत्न लेकर वह अदृश्य हो गया। जिनचन्द्र अदृश्य-करणी सोनी के प्रभाव में अदृश्य होकर राजा के पास पहुँचा। वहाँ चारो स्त्रियाँ विश्वासपूर्वक यह बातचीत कर रही थी कि 'हमारे धर्मिष्ठ पति हमें अवश्य मिलेंगे।' राजा ने जब यह बातचीत सुनी तो चारो को कुलांगना समझकर प्रातःकाल राज-सभा में बुलाया। उनमें परिचय पूछा गया तो वे सोनी नहीं। फिर उन दुष्ट बन्धियों से पूछा तो उमने कहा—“मैं परदेश में ऊँची बीमन में खरीदकर आपको भेंट देने के लिए इन्हें लाया हूँ।” परन्तु मन्त्री ने इसे अगम्यक बताया। जिनचन्द्र भी रूप-परिवर्तन करके वहाँ उपस्थित था। उसने एक श्लोक कहा—अथमे संकेत कर दिया था, अपने परिचय का। स्त्रियाँ उसे पहचान न सकी। मन्त्री और राजा ने परिवर्तित रूप में बैठे जिनचन्द्र में श्लोक का रहस्य पूछा, तब उसने आक्षोभान्त सारी घटना कह दी। राजा ने उस बन्धिये से जिनचन्द्र को ५ हजार रत्न वापस दिलाकर उसे देश निवाता दे दिया। चारो स्त्रियाँ जिनचन्द्र को सौंपी, उसने जब अपना असली रूप बनाया तो वे चारो अत्यन्त हर्षित हुईं। राजा के यहाँ कुछ दिन तक रहकर जिनचन्द्र चारों स्त्रियों को लेकर अपने नगर को लौटा। माता-पिता सब उसे देख-कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन चार ज्ञान के धारक श्री धुवनधानु मुनि नगर में पधारे। उनका धर्मोद्देश मुनिकर जिनचन्द्र ने थावक धर्म अंगीकार किया। चिन्तामणि रत्न के प्रभाव में वह सब जीवों को अमरदान देना हुआ, दान-शील-नर भाव की आराधना करना हुआ गृहस्थ धर्म का पालन करना रहा। अन्तिम समय में सभाधिपूर्वक मृत्यु प्राप्त कर बारहवें देवताक के इन्द्र का सामानिक देव बना। क्रमशः मोक्षपापी बनेगा।

यह है अर्थ-कामयुक्त धर्माचरण का प्रभाव। जिनमें जिनचन्द्र सबट के समय भी धर्म-प्रभाव में बचकर सहीमनामत रह सका।

### धर्ममूलक अर्थकामसेवी की धर्मनिष्ठा

इसीलिए गोदमकुलक में कहा गया है—

‘मिरला नरा तिमि कि आचरंति’

धर्मवर्षादिन अर्थ-काम का मेवत करने वाले (मिथ) पुरुष इन तीनों का आचरण करते हैं।

सिद्धा व्यक्ति इन भी ब्रमाण्ड है, सासारिक सुखों के अनेक साधन भी जुटाना है, और विवाह करके कामसुखों का भी अनुभव करना है, मन्नात भी पैदा करना है, परन्तु यह सब धर्ममर्षांडा के नियन्त्रण में ही करना है।

यह केवल मर्षा के लिए, इन को निजोरी में बन्ध करके रखने के लिए सधोपात्रेन नहीं करता, न ही किसी का शोषण करके अन्याय-अनीति एवं अधर्म में



## पण्डित रहते विरोध से दूर

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

संगार में अनेकों कोटि के मानव-जीवन होते हैं. पिछले प्रवचनों में मैं अ परायण, कामपरायण, धान्निपरायण एवं धर्ममर्यादिन अर्थ-कामयुक्त जीवन का सम्बन्ध में प्रकाश डाल चुका हूँ। आज एक विशिष्ट कोटि के जीवन के सम्बन्ध में खर्चा करूँगा। यह जीवन है—पाण्डित्ययुक्त जीवन। यह जीवन पहले के जीवनो से उच्चकोटि का है। पण्डित के जीवन का अर्थ है—समझदारी और विवेक के प्रकाश से देदीप्यमान जीवन।

पण्डित जीवन की उपयोगिता क्यों ?

जिस मनुष्य के जीवन में धन प्रचुर मात्रा में हो, सुख के साधन भी बहुत हो, विषयोरधोय भी सामग्री भी पर्याप्त हो, धार्मिक नियम, बल, तप, जप आदि धर्म-परण भी हो, अर्थ-काम का सेवन भी धर्ममर्यादा में होता हो, उसने व्यावहारिक शिक्षा भी अच्छे ढंग से प्राप्त की हो, उन व्यक्ति का परिवार भी भरा-भूरा हो, सौकरिकविद्याओं में भी उसने पाण्डित्य प्राप्त कर लिया हो; इनका होने पर भी उसमें बुद्धि शीघ्र न हो, विवेक और समझदारी न हो, उसे यथासंख्य से जीवन-यापन करना न आता हो तो उसका जीवन सफल नहीं कहा जा सकता। इसलिए आज के प्रवचन में यह बताया जाएगा कि पण्डित का जीवन किस प्रकार का होना चाहिए ?

हमारे शास्त्रों में 'पण्डितमरण' का उल्लेख आता है। पण्डितमरण भी उसी का सफल माना जाता है, जिसका पण्डित जीवन सफल हो। जो अपने जीवन में पण्डित जीवन जी चुका है, समझदारी और विवेक से धर्मयुक्त जीवन ध्यनीत कर चुका है, वही अपनी मृत्यु को सफल बना सकता है। मृत्यु के समय वही पूरी समझ-दारी, विवेक, धान्नि और समर्था के साथ रहकर वहाँ से विदा हो सकता है। अपने शरीर को हँसने-हँसने प्रसन्नतापूर्वक छोड़ सकता है। इस दृष्टि में पण्डित जीवन का बितना महत्व है ? यह आप अपनी-आप समझ सकते हैं।

जिस व्यक्ति के पास धन, साधन, सुख-सामग्री आदि पर्याप्त मात्रा में हों, स्वस्थ शरीर हो, बुद्धि उबैरा हो, शिक्षा भी अर्जित कर भी हो, परन्तु इतना पाण्डित्य



व्यक्ति को पण्डित की कोटि में रखा जा सकता है ? कदापि नहीं । फाट्टू सन्त बबीर ऐसे लोगों के लिए साफ-साफ कह देने हैं—

पण्डित और भतालधी दोनों सूझे माहि ।

धीरन को करे चांदना, आप अन्धेरे माहि ।।

जो सच्चा पण्डित होगा, वह उपदेश और आचरण के इस प्रकार के विरोध से दूर होगा । वह अपने जीवन में कोई दुर्बलता होगी तो उसे प्रकट कर देगा या उस सम्बन्ध में दूसरों को उपदेश नहीं देगा । पण्डित का जीवन अपने कथन से बिलकुल विपरीत तो कदापि नहीं होगा । वह मिद्धान्त के अनुरूप अपने जीवन व्यवहार को ढालने का प्रयत्न करता है । सिद्धान्त और जीवन व्यवहार के विरोध को वह कदापि पसन्द नहीं करता ।

कई पण्डित केवल पण्डितों के घीच में ही पण्डित होने हैं । वे अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन सभा भोगाइटियों में नहीं कर पाते । वे पण्डितों के साथ ही विवाहार्थि अवसरों पर शास्त्रार्थ करने पण्डितमानी घन जाते हैं । ऐसे दो पण्डित वहीं मिल जाते हैं, या किसी यजमान के यहाँ एकत्रिन हो जाते हैं तो प्रायः एक दूसरे का विरोध (दुरा बोलकर एक दूसरे के पाण्डित्य की मौखिक निन्दा) किया करते हैं । इसीलिए ऐसे पण्डितों पर किसी ने ब्यग कसा है—

पण्डितो पण्डित हट्टवा भियः घुरपुरापते ।

एक पण्डित दूसरे पण्डित को देखकर ईर्ष्या से घुरघुराता है ।

एक बार दो पण्डित एक साथ दक्षिणा की आशा से एक सेठ के यहाँ पहुँच गए । सेठ ने विद्वान् समझ कर उनकी बड़ी आकम्पत की । एक पण्डित जब स्नानादि करने गए तो सेठ ने दूसरे से पूछा—“महाराज ! आपके साथी तो महान् विद्वान् मालूम होने हैं ।” पण्डितजी ने इसकी उदारता वहाँ कि वे दूसरे पण्डित की प्रशंसा भुन लें, विरोध न करें ? वे मुँह बिगाड़ कर बोले—“विद्वान् तो इसके पदों में भी नहीं रहने । यह तो निरा बीन है ।” सेठ खुप हो गए । जब उक्त पण्डित गन्ध्यादि करने बैठे तो पहले पण्डित ने उन्हें कहा—“आपके साथी तो बड़े विद्वान् नजर आए !” ईर्ष्यानु पण्डित अपने हृदय की गहरी बिचरते हुए बोले—“विद्वान् उद्भान कुछ नहीं है, बोर गघा है ।” भोजन के समय सेठ ने एक की पाली में घाग और दूसरे की पाली में धुम परोस दिया । इसे देख दोनों पण्डित आपबबूना हो गए । बोने—“मिटनी ! हमारा यह अपमान ! दुतनी घुप्टता !” सेठजी ने कहा—“महाराज ! आप ही लोगों ने एक दूसरे को बीन और गघा बताया है । मैंने तो दोनों के साथक सुराक पाली में रनी है ।” दोनों पण्डित अत्यन्त सग्नित हुए और अपना-सा मुँह लेकर चले गए ।

हाँ, तो इस प्रकार के जो साक्षर होते हैं, उनसे एक दूसरे के प्रति घट्टिपुना,



सबको आत्मवत् देखने वाला पण्डित परदोषदर्शी नहीं होता, क्योंकि उसके लिए कोई परमा है ही नहीं, विरोधी है ही नहीं, तब वह किसके दोष और अशुभ देखेगा, अगर कोई दोष और अशुभ है तो उसके अपने हैं। ऐसा पण्डित स्वयं कष्ट और दुःख सह कर भी गंगार के प्राणियों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता है, नाथ, बिच्छू, गिह, बाघ, आदि हिंस्र जन्तु भी उसे अपने परम मित्र समझे हैं। जैनशास्त्रों की भाषा में ऐसे श्रेष्ठ पण्डितों को 'पंड्रिया पविषत्तणा' (प्रविषयण पण्डित) कहा गया है। धम्मपद में ऐसे पण्डितों के लिए कहा गया है—'अत्तानं इमपंति पंडिता' अर्थात् जो अपनी आत्मा का धमन करते हैं, अपना सर्वस्व आत्मीयतावश दूसरों के हित में लगा देते हैं, वे पण्डित हैं। जहाँ ऐसा विरोध का एवं विकट शत्रुता का सातावरण हो, वहाँ भी वे निर्विरोध रह कर अपनी दामा भावना, सहिष्णुता एवं विचारशीलता से विरोध को प्रेम में बदल देते हैं, विकट शत्रुता को मित्रता में बदल आते हैं।

महात्मा गाँधीजी अफ्रीका की जेल में थे। उस समय एक जूनु जाति का सून्धार और अमरुद व्यक्ति उनकी सेवा में रखा गया था। परमसहिष्णु गाँधीजी उनके अमरुद व्यवहार से कभी अप्रसन्न नहीं होते थे। एक बार उस जूनु जातीय सेवक को अफ्रीका के अत्यन्त जहरीले बिच्छू ने काट खाया। वह घोर वेदना के कारण छटाटा रहा था। गाँधीजी ने चाकू से उस जहरीले स्थान को काट कर मुँह से वहाँ का जहर घूस कर घूक दिया और फिर एक वनस्पति का लेप लगा कर पट्टी बांध दी। कुछ ही देर में उसे आराम हो गया। महात्मा गाँधीजी से वह इतना प्रभावित हो गया की उसी दिन से वह एक मन्न सेवक और मित्र बन गया। यह है सच्चा पाण्डित्य, जिसमें विरोध के विष को अमृत में परिणत करने की शक्ति है।

जिसके हृदय में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और आत्मीयता होती है, जैसे मृष्टि के बिना भी प्राणी में उष्णता या नीचता दृष्टिगोचर नहीं होती। छोटे-बड़े उष्ण-मीश या छूत-अच्छूत का भाव रखना प्रेम नहीं, विरोध है, घृणा है, द्वेष है। प्रेम या मैत्री आत्मा का सहज अविरोधी गुण है, जबकि घृणा द्वेष, बैर, आदि आत्मा का विरोधी दुर्गुण है। जो पण्डित होगा, वह इन आत्मविरोधी दुर्गुणों को अपने जीवन में स्थान नहीं देगा। इसीलिए मीना में पण्डित की दृष्टि के विषय में कहा गया है—

“विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गति हृत्तिनि ।

गुनि चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शन ॥”

“विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण के प्रति, गाय, हाथी, कुत्ता और चण्डाल के प्रति पण्डित समदर्शी होते हैं।”

अपने पत्नी बच्चों तथा रिश्तेदारों तक ही प्रेम की प्रतिबन्धित रखना स्वायं है। इसे प्राणिमात्र तक फैलाना ही परमायं है। ऐसा पारमायिक प्रेम जिसमें आ आश है, वह व्यक्ति सभी प्राणियों के प्रति समदर्शी हो जाता है। उसकी दृष्टि में





(जंगली) सामने उस कोने में खड़ा है। पर मेरी प्रार्थना है कि इन चारों को आप कोई दण्ड न दें।

राजा ने जंगली को बुला कर सारी हथीवत पूछी और एक लाख रुपये इनाम दे दिया। इन चारों को प्रत्येक को पाँच-पाँच रुपये देकर विदा किया। फिर श्यामसिंह मिहामन में उतरे और रामसिंह को छाती से लगा लिया। कहने लगे—“जैसा गुना था, वैसा ही आप निकले। परोपकार के लिए आपने अपनी जान खतरे में डाल दी। मैं सात जन्म में भी आपके चरणरज की समानता नहीं कर सकता। लीजिए, आप अपना राज्य महल और सजाना सभालिए। आप ही इस राज्य के लिए योग्य हैं। मैं आपकी परीक्षा कर ली।”

रामसिंह ने पहने तो बहुत आनाकानी थी, लेकिन राजा रामसिंह एक जनता की आप्रहू प्रार्थना पर सेवाभाव से राज्य संचालन का भार स्वीकार किया। गद्दी पर बैठकर अज्ञानशत्रु राजा रामसिंह ने घोषणा की—“शत्रु को कभी मत मारो, उसकी भयता को मारो।”

यह है, विरोधी शत्रु को अविरोधी—मित्र में बदलने का ज्वलन्त उदाहरण। यही शासन में पण्डित का संपादन सदाग है जो चन्नाकर किरी से विरोध नहीं करता, न विरोध के कारण उरमिष्य करना है, बल्कि विरोध के सामने नहीं झुककर उसे अनुकूलता में डाल लेता है।

बड़े बड़े समाज में सकीर्णवृत्ति के, गतानुगतिक, परम्परा के अन्ध-अनुगामी रूपमण्डूक लोग, ऐसे लोगों का विरोध करते हैं जो, उदारवृत्ति के, सबको अपना मान कर अपने-अपने धाने, पुराने विचार-धातक, समाज के लिए अहितकर किसी सिद्धान्त-विरोधी युगवाह्य नियमोपनिषद परम्परा और रीतिरिवाज को बदलकर प्रगति एवं विकास के नश्यपथ की ओर समाज को ले जाते हैं। ऐसे सकीर्ण स्वार्थवृत्ति के लोग ईर्ष्या, द्वेष या स्वार्थ से प्रेरित होकर ऐसे सज्जन के मार्ग में रोड़ा अटकाने हैं। उसकी सजा उठाने हैं, उसे भसा-बुरा कहने हैं। उनके इसप्रकार के विरोधी व्यवहार का विद्वान अहितक इग में शालभाव से प्रतीकार करता है और उन दुर्वृत्तिलाले लोगों के विरोध को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। अपनी सज्जनता और शालीनता वह नहीं छोड़ता। नतीजा यह होता है, कुछ ही दिनों में उनका विरोध का बवकर अपने आप शान्त हो जाता है। वे हार मरु कर अपने आप बैठ जाते हैं।

बाशी के औरियटन महाविद्यालय के सभाप्रधान में पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक सभा का आयोजन किया। सभा में देश के विभिन्न भागों से प्रकाण्ड पण्डितों को आमन्त्रित किया था। सभा कार्यवाही के प्रारम्भ में पण्डितजी ने बड़े ही नम्र शब्दों में यह बात रती कि हरिजन भाई हिन्दू समाज के एक अंग बने रहें, ब्राह्मण उन्हें ही बराबरी का स्थान दें और उनके साथ कोई भी गरवण छुभाएण का व्यवहार न करें तो वे भी अपने को सह्योती मानते रहेंगे, तथा देश का स्वयम्भू



की परम यही है कि मानवीय भूतों को वह उदात्तापूर्वक क्षमा करना रहता है, जिससे सम्बन्धों में कटुता नहीं, बल्कि मधुरता बनी रहती है, और बारबार मनविषाई करने वाले के प्रति पण्डित की क्षमा उसे सही रास्ते पर ला देती है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि जो गलती करता जाता है, उसे पण्डित समझता ही नहीं, वह समझाना है, आवश्यकता पड़ने पर मधुर उपालम्भ भी देता है, प्रेम-भरी धमकी भी देना है, बिन्दु देना है उपयुक्त अवसर पर ही। वह जब-तब बार-बार उलाहने, धरंदो की मार, नुक्ताचीनी, तानाबशी या व्यंग कम्पना आदि बातें प्रतिशोध या घृणा से प्रेरित होकर नहीं करता, क्योंकि ये दोष शरीर को कमजोर, स्वभाव को चिढ़ाचिड़ा, मस्तिष्क को खोखला और आत्मा को अपवित्र बनाते हैं। उपयुक्त समय पर कही हुई कड़वी बात भी मीठी लगती है। श्रात काल सूर्य की किरणें मुलायम और मधुर लगती हैं, आरोग्यवर्धक होती हैं, वे ही दोपहर में प्रचण्ड हो उठती हैं और लोगों को बीमार तक कर देती हैं। यह समझकर पण्डित पुण्य आविष्कारपूर्ण विधायि की टान देना है। फिर जब उपना का वातावरण समाप्त हो जाता है, या एवान्त में प्रिय व्यक्ति से मिलना है, तब वह उसको अपनी बान नम्रता-पूर्वक समझाना है। समझाने में अगर परिहास या कटुता नहीं होती है तो पण्डित की कही हुई बात की समर्पण और सफलता मिलती है।

पण्डित की सारी बुद्धिमत्ता और विचारशीलता परिस्थितियों, समस्या और तगड़ों को शान्तिपूर्वक गुनगाने में है। कान्ह और कटुता तो समस्याओं को और उत्साहकर उन्हे विगाड़ देती है। क्षमा, मधुरता, नम्रता, सहनशीलता आदि पण्डित के गुण ऐसे हैं जो विरोधों को शान्त कर सकते हैं। पण्डित का सारा व्यक्तित्व ही एक तरह में जीवन का बटोर परीक्षण है। जो दिनना विचारधीन और बुद्धिमान है, उसे उनना ही उदार और क्षमाशील होना चाहिए। क्षमाशील एवं उदार व्यक्ति के लिए समाज में जीवन शत्रु है।

इसीलिए पण्डितजन के ८ गुण बनाए हैं, जो विगाध विगिन में सम्प-  
न्यित हैं—

दम्भं मोक्षते न निन्दति परान्, नो भाषते निन्दुरम् ।  
प्रोक्तं केनचित्प्रियञ्च हृते चोपञ्च नात्मबन्धे ॥  
जगत्वा शारत्रमपि प्रभूतमनिगं मन्निन्दते सूक्ष्मम् ।  
दोषाच्छादयते गुणान् विमुक्तं चाप्यो गुणा पण्डिते ॥

अर्थात्—पण्डित में ८ गुण होते हैं। जैसे कि—

- (१) जो दम्भ दिनावा नहीं करता।
- (२) जो दूसरों की निन्दा नहीं करता।
- (३) बटोर नहीं बोलता।
- (४) किसी के द्वारा कपित अप्रिय बचन महता है।



हृषीकेश, विषाद, विन्ना, उड्डिगता आदि इन्द्रो—स्वभाव विमूढ बातों से गर्देव दूर रहना है। विन्ना और भय तो उभे गगने हैं, जिनमें अपने और अपने के प्रति आगति हो और दूरगो के प्रति घृणा अथवा अपने स्वार्थ में अनुरक्त हो और पर-मार्थ में विरक्त। जब पण्डित लोग अपने स्वार्थ में तत्पनीन हो जाते हैं, दूसरे की गुणमुविधाओं या लामो या बिलकुल ध्यान नहीं रखते, तभी दुःख, विपत्ति, कष्ट और भय उपस्थित होते हैं। स्वार्थपन्ना के कारण उन पण्डितों की बुद्धि बिलकुल मोटागुन एव पक्षपात युक्त हो जाती है। परन्तु जो मन्त्रे पण्डित होने हैं, अर्थविभाग या बटवारा करते समय भी उनके मन में पक्षपात या स्वार्थभाव नहीं आता, यही कारण है कि वेरविरोध या मतमुदाय उनके घटो नहीं फटकते।

नवद्वीप (नदिया) के प्रसिद्ध विद्वान् रामशिरोमणि और उनका छोटा भाई रघुमणि विद्यास्तन गाय-भाष्य रहने थे। वे जितने विद्वान् थे, उतने समझदार और मन में रहने वाले थे। उन्होंने बहुत धन कमाया, किन्तु भी सम्पत्ति का बटवारा नहीं किया। एक दिन रामशिरोमणि ने रघुमणि से कहा—“भाई ! अब हम सम्पत्ति का बटवारा कर लें तो अच्छा है।” रघुमणि बोले—“क्या कहा आपने ? जो मूर्ख होते हैं, वे अलग होते हैं, हम पण्डित होकर क्या अलग होंगे ? अलग होने हैं, वे स्वयं विरोध के विष में युक्त हो जाते हैं और अपनी मनान में भी विरोध का विष बीज बो जाते हैं। ‘मोग हमें क्या कहेंगे ?’ रामशिरोमणि बोले—“हमें अलग नहीं होना है, परन्तु सहको को सम्पत्ति बांट दे तो अच्छा है, अन्यथा भविष्य में हमारी तरह एवना और अविरोधी प्रेम में रह सकें, ऐसी सम्भावना क्या है।” रघुमणि ने कहा—“दादा ! जैसी आरबी इच्छा ! रामशिरोमणि ने शारी सम्पत्ति के दो हिस्से किये। एक में अपने तीन पुत्रों का हिस्सा और दूसरे में अपने छोटे भाई के एक पुत्र का हिस्सा। यह बटवारा देखकर रघुमणि ने कहा—‘भाई ! यह आपने क्या किया ? अगर हम अलग हुए होत तो दो हिस्से करने ठीक थे। परन्तु अलग तो पुत्र हो रहे हैं। रघुमणि शारी पुत्रों के पार हिस्से पर दोशिल। इसी में मेरा मन प्रसन्न रहेगा। परन्तु पण्डित शिरोमणि नहीं माने। उन्होंने दोनों भाईयों के दो हिस्से ही किये। अगर रघुमणि ने अपने पुत्र के हिस्से में से दो हिस्से और बाँके समविभाग कर दिया।

वास्तव में उन पण्डित होते हैं वे शरीरों स्वार्थबुद्धि नहीं होते। वे उन पार मूढपण्डितों की तरह अनिश्चयी नहीं होत, जिनमें अपनी बारी पर गाय की दूध विना, मगर उभे पारा दाना नहीं लियाया। पण्डितों की बुद्धि की विशेषता बनाने हुए कहा है—

ना प्राण्यमभिधातुति नष्ट नेष्टनि तोषिनुम् ।  
आवाहवपि न मुह्यन्ति नरा पण्डितबुद्धयः ।

पण्डितबुद्धि वाले मनुष्य अध्यात्मिक हैं, जो क्षण प्राण नहीं हो सकनी उभे प्राण्य



“बल ! पिता के हृदय ने गुरु (पण्डित) का कर्तव्य महान् होता है।” इतना गा संक्षिप्त उत्तर देकर शास्त्रीजी घर की ओर चल दिये।

पुत्र का अनुराग प० गंगाधरशास्त्री के अध्यापन-कर्तव्य में बाधक न बन सके।

सच्चे पण्डित के जीवन में एक विशेषता होती है कि उसे चाहे विरोधियों— समाज-विरोधी आचरण वालों के बीच भी छोड़ दिया जाए या रहना पड़े तो भी वे शान्ति, धैर्य, महिष्णुता और सद्भावना से विरोधियों के दिल को जीत लेते हैं, उनका हृदय परिवर्तन कर देते हैं, विरोधी आचरणवालों को सामाजिक जीवन से अविरোধी आचरण वाला बना देते हैं।

रहीम कवि ने कितनी सुन्दर बात कह दी है—

ओ रहीम उत्तम प्रकृति, हा करि सके कुसंग ।

खंदन विष स्थापत नहीं, सपदे रहत भुसंग ॥”

भावार्थ स्पष्ट है।

पण्डित रविशंकर महाराज महात्मा गांधी के लोकसेवक बने, उससे पहले वे गुजरात की अपराधी पाटणवाणिया जाति के पुरोहित थे। रविशंकर महाराज के इन महमानों का मुख्य पैसा खोरी करना था। जो पाटणवाणिया जितना अधिक खोरी कर लेता था, वह अपनी जाति में उतना ही अधिक आदर-पात्र माना जाता था। जो पाटणवाणिया एक सप्ताह तक खोरी करने नहीं जाना था, उसकी स्त्री उससे रूठ जाती थी, और उसे निटन्ला, निकम्मा और डरपोक कह कर निरस्तृत करती थी। लेकिन प० रविशंकर महाराज ने इन और ऐसी ही अपराधी जातियों के बीच निलम्पना में रहकर आरामीयता के सम्बन्ध स्थापित किये और अपने अन्तःकरण की पवित्र प्रेमभरी धारणा से उनके जूआ, खोरी, नशा और आसस आदि दुर्गुण छुड़ाए। उनके नमस्कार से कई लोग प्रतिज्ञा कर लेते और उसे आजीवन निभाते।

उन्होंने कई भयंकर आनकवादी डाकुओं से मिलकर और उनके बीच निलम्पन रहकर उन्हें इनकी आरामीयता से समझाया कि बितने ही डाकुओं ने डकैती छोड़ दी और समाजसेवा कार्य करने लगे।

इस प्रकार पण्डित विरोधियों के बीच भी अवरोधी रहने हैं, बल्कि विरोधियों का वे विरोधी जीवन भी बदल देते हैं।

विरोध कहीं-कहीं और कैसे-कैसे ?

पण्डित का मुख्य लक्षण जो विरोध से बिरल रहना बताया गया है, अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विरोध कहीं-कहीं और किन्-किन रूप में आता है ? विरोध के तीन बीज-बीज में हैं ? जिन्हें जानकर पण्डित जीवन और का अधिपानी मानव उन विरोधों में विग्न नह सके।





है आप ? मैं तो आपकी मुँह मानता हूँ । उधर द्विवेदीजी का भी यह तर्क था कि आप तो मेरे मुँह हैं ।" बाद में डा. महोदय ने द्विवेदीजी का अभिनन्दन करते हुए कहा—“मुझे एक बार द्विवेदी जी ने तोय निगमने के लिए कहा । बड़ी मुशिल से समय निकालकर मैंने एक गेय निगमकर इन्हें भेजा । लगभग एक मास बाद 'सरम्पनी' में आदि में अन्य तक द्विवेदीजी ने सन्तोषित करके प्रकाशित किया । दमतिग मैं तो सदैव यही कहूँगा कि द्विवेदी जी मेरे मुँह हैं, क्योंकि इन्होंने सन्तोषन करके मुझे हिन्दी निगमना गिनाया है ।

इस प्रकार की नम्रता और निरभिमानता जब पण्डित में होंगी है, तो कहीं विरोध नहीं होता, यन्कि नम्र मनुष्य दूसरों में बहुत कुछ सीख सकता है । अगर ये दोनों पण्डित अहंकारी होने तो इनमें परस्पर विरोध होता, एक दूसरे को ये भता-चुरा कहते और कटुता फैलती ।

अहंकारी पण्डित दूसरों को नीचा दिखाने और स्वयं महान् बनने के लिए दूसरों—प्रतिस्पर्धियों को मिटाने की कोशिश करता है । इसके परिणामस्वरूप परस्पर मर्षण, पदों की चीनामरटी आदि विरोध पैदा होने हैं । जो विद्वान दूसरों को मिटाकर, दूसरों को नृशमान पहुँचाकर, उनकी गृह्णाचीनी करके आगे बढ़ने का स्वप्न देखते हैं, उनका अग्रपण्ड होना निश्चित है । ऐसे व्यक्ति अपने चारों ओर विरोधियों और प्रसहयोगियों की परतल गड़ी कर लेते हैं । सत विनोदाजी के शब्दों में मफ-पता के मिडान्त की श्याम्वा इस प्रकार है—“पडोमी के पाग ७ सेर तावन है और मेरे पाग १० सेर । यदि दोनों परस्पर टकराएँगे तो परिणाम में १०—७ = ३ सेर तावन ही बच रहेगी । दोनों पडो की ही हानि होगी । यदि दूसरी स्थिति में मिलकर श्रम किया जायेगा तो १० + ७ = १७ सेर तावत पैदा होगी, जिसमें मफ-पता अधिक मात्रा में अस्तित्व होंगी । मेरे दो हाथ और आपका दो हाथ मिलकर ० + ० = ४ हाथ होंगे हैं, किन्तु जब य परस्पर टकराएँगे तो नतीजा २—० = ० शून्य ही निकलेगा ।

जब लोग दूसरों की गर्दन काटकर स्वयं बनाने की कोशिश करते हैं, दूसरे के बढ़ने हुए पदों की स्वीकार स्वयं आगे बढ़ने का स्वप्न देखते हैं, दूसरों का गुन घुन कर स्वयं मोटा बनना चाहते हैं, दूसरों को उत्राडार अपना घर बनाना चाहते हैं, दूसरों का गुन चीनकर स्वयं गुनी बनना चाहते हैं या निश्चित है कि इन मर्षात्र विरोधी अमानुषिक बाधों के परिणाम अल्पतः प्रतिकूल व दुःखप्रद ही मिलेंगे । त्रिा की विरोधी प्रतिनिधता अवश्य होगी है । अतः पण्डित का समाज विरोधी धारी, दर्बनी, हया, सृष्ट शोषण आदि में गर्दव बनना चाहिए ।

अहंकार के बग मनुष्य दूसरों का अपमान और निरस्कार भी कर बैठता है, मागकर अपने से छोटी का अपमान वह मानवान में कर बैठता है, परन्तु ऐसा करने में विरोध की प्रतिनिधता पैदा होती है । पण्डित मदनमाहन मालवीय के पुत्र मोक्षिन्द



समयानुसारिता के बिना नियमित, व्यवस्थित एवं संयमित रूप में प्राप्त नहीं हो सकती।

महात्मा गांधीजी समय की कीमत एवं महत्ता जानते थे। वे अपने साधन समय का सदुपयोग करने हेतु मरना एक जेबघड़ी रखा करते थे। जेबघड़ी रखने का उद्देश्य यही नहीं था कि उन्हें समय का ज्ञान होता रहे, बल्कि यह भी था कि वे स्वयं समयबद्ध अपना प्रत्येक कार्य कर सकें, तथा जो लोग उनसे मिलने आएँ वे भी निर्धारित समय से एक मिनट भी अधिक न ले सकें। मुंबई के अमेरिकन पत्रकार सुई पिगर जब गांधीजी से मिलने आए, उस समय बार्नालाय का निर्धारित समय बीत जाने पर गांधीजी ने उन्हें अपनी घड़ी दिखाई कि बातचीत का समय समाप्त हो चुका है। पिगर ने अपनी पुस्तक में एक पत्रकार की हैसियत से लिखा है कि 'मेरा ग्राम ही एक ऐसी जगह थी, जहाँ उन्हें घड़ी दिखनाकर यह संकेत कर दिया गया था कि मुलाकात का समय बीत चुका है।'

समय को एक पाश्चात्य विचारक ने मोने की तितनी बनाया है—

'Time is chrysalis of eternity'

अर्थात्—समय अनन्तकाल की एक स्वयंम तितनी है। समय को सोना अमूल्य जीवन को सोना है, यह बात संज्ञन पुरुष भली-भाँति जानते हैं। इसलिए वे समय की कभी उपेक्षा नहीं करते। भगवान महावीर ने पावापुरी के अपने अन्तिम प्रवचन में समय का महत्व और मूल्य बताने के लिए ही गणधर गौतम को सम्बोधित करने हुए एक ही वाक्य को कई बार दोहराया है—

समयं गोयम । मा वमापए ।

हे गौतम ! क्षणभंग का भी प्रमाद मत कर ।

भगवान महावीर का यह उपदेश सगर के समस्त भाषकों के लिए है, जगत् के समस्त राज्यों के लिए है कि वे जीवन के एक क्षण को भी प्रमाद में न छोड़ें। प्रमाद जीवन का मरण है। इच्छमरण तो होता रहता है, मगर प्रमाद आदि के वश में होकर मिथ्यात्व अविनि, बपाय, अशुभकृति-प्रवृत्तियों में समय को सोना भावमरण है। इच्छमरण की अपेक्षा भावमरण अधिक भयकर है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है—

"क्षण-क्षण भयंकर भावमरणे का भरो राखो रहो?"

समय पालन : शाश्वत जीवन की कुञ्जी

ऐसा साधक समय का एक क्षण भर समय भी व्यर्थ नहीं। एक क्षण मारवादी भाषा में कहा है—

धन उण साधक ने, जो वसपल सफल बनावे रे ।

जो पग-पग जागृति लावे रे ॥धन॥

साम-साम में भावदान बन, जोगी अमल जगावे रे ॥धु॥



वैद्य ब्रह्म भट्ट ने जामसाहब के स्मारक में एक लाख कोरी खंदा लिखाया, मगर गति ऐसी थी नहीं, उनके एक पुराने रोगी से अच्युता को पता चला तो उन्होंने ब्रह्मजी के यहाँ एक लाख कोरी भिजवा दी। भट्टजी ने अपने मुनीम से कहा—“देखो धर्म की गति कितनी तेज है ! इन्हें अभी ही जामसाहब के यहाँ पहुँचा दो।

बन्धुओ ! हमीलिए कहा भया है—“ते साहूणो जो समयचरंति” सत्पुरुष समय के पारखी, ज्ञाता व अवसर का उचित उपयोग करते और समय के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। वे धर्मकार्य या सारकार्य में कभी विलम्ब नहीं करते, प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते हैं। आप अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं तो समय के पारखी बनें। बानव में जो समय को परखना है और उसका उचित उपयोग करता है, संसार में वही सु-पुरुष, मत्पुरुष या उत्तम पुरुष बन सक्ता है।



वैद्य शङ्ख भट्ट ने आमसाहज के स्मारक में एक साम कोरी चन्दा लिखाया, मगर स्थिति ऐसी थी नहीं, उनके एक पुराने रोगी से अन्तुना को पना पना तो उन्होंने बंछजी के यहाँ एक सास कोरी भिजवा दी। भट्टजी ने अपने मुनीम से कहा—“देखो धर्म की गति कितनी तेज है। इन्हें अभी ही आमसाहज के यहाँ पहुँचा दो।

बन्धुओ ! इसीलिए कहा गया है—“ते साहजो जो समयचरति” सत्पुरुष समय के पारपी, ज्ञाता व अक्सर का उचित उपयोग करते और समय के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। वे धर्मकार्य या सत्कार्य में कभी विलम्ब नहीं करते, प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते हैं। आप अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं तो समय के पारपी बनें। भारतव में जो समय को परगना है और उमका उचित उपयोग करता है, संसार में वही सु-पुरुष, सत्पुरुष या उत्तम पुरुष बन सकता है।







तो मार्गानुमारी या सामान्य सम्यक्धी श्रावक तक की भूमिका अपना लेता है, इससे आगे की प्रतबद्ध एवं धर्मनिष्ठ श्रावक की भूमिका तक वह नहीं पहुँचता। सत्य, मित्र और सुन्दरम् इस जीवननिर्माता त्रिपुटी में यह 'सुन्दरम्' को ही विशेष पसन्द करता है, सत्य उसको स्वार्थमय और सकीर्ण जीवन जीने में बाधक प्रतीत होता है, 'मित्रम्' के लिए भी उसे परमार्थ और परोपकार के पथ पर चलना पड़ता है, जो उसे दुःगह लगता है। इस प्रकार सामान्य व्यक्ति का ध्यावहारिक जीवन समार के स्थूल दृष्टि वाले लोगो की दृष्टि में कदाचित् धन की प्रचुरता होने के कारण या शरीर सौन्दर्य, विशिष्ट कला, विद्या या प्रचुर बौद्धिक वैभव होने के कारण प्रशंसनीय और आदरणीय बन सकता है, व्यवहार में वह संसार का सुखी, प्रतिष्ठित और आरामतलब व्यक्ति ममता जाता है, उसे सासारिक लोग अधिक सन्तान पैदा करने के कारण, अधिक धन-उपाजन करके थोड़ा-सा राहत कार्य में खर्च कर देने के कारण अथवा अपने परिवार या समाज में या राष्ट्र में किसी को मारने, किसी को मुझ में हराने या किसी को कुशनी में पछाड़ने अथवा मोन्दर्य आदि की प्रतियोगिता में अग्र-स्थान पाने के कारण सम्मानित किया जा सकता है, वह चुनाव आदि में तिजडम-बात्री के द्वारा उच्च पद या सत्ता का स्थान भी प्राप्त कर लेता है, यहाँ तक कि पुण्य या राहत के अनेक कार्य करके वह दूर-दूर तक प्रतिष्ठि भी पा लेता है। जहाँ भी जाता है, अपने पूर्व प्रबल पुण्य के कारण, अपने धुभाधार भाषणों से लोगो को प्रभावित कर देता है, अपने वचनों से आम जनता को आकर्षित कर लेता है, अनेक लोगो को अपने इशारे पर बधा सकता है, अनेक व्यक्तियों को अपने अधीन नौकर-चाकर रख लेता है, अपनी खालाकी या बह्नादुरी के कारण या साहसपूर्ण कार्यों के कारण सांसारिक लोग उसे अभिनन्दन-पत्र देते हैं, उसे उच्च-आसन देते हैं, उच्च पद भी देते हैं, उच्च अधिकार भी देते हैं। धार्मिक या आध्यात्मिक क्षेत्र में भी वह अपनी वाचासता, धन-सम्पन्नता, खालाकी और तिजडमवात्री से हजारी-साखी लोगो को अपने अनुयायी बना लेता है, यहाँ तक कि अध्यात्मयोगी, अवतार, गुरु, धर्मनेता, आचार्य या भगवान् के नाम से वह संसार में पूजा भी पाता है। उसकी भाषणशैली और सेगनशैली हमनी आकर्षक होती है कि उगमे आकर्षित होकर लोग उसके पैर पूजते हैं, हजारी-साखी रुपये उस पर न्योछावर कर देते हैं, उसे हाथों में उठा लेते हैं, उसके लिए एक में एक बटकर गुण-सुविधाएँ छुटा देते हैं, यहाँ तक कि विशिष्ट सुन्दरिदा, अनेक ऐश-आराम के साधन, बगले, कार और धरतल साधन उसकी सेवा में प्रस्तुत कर देते हैं। संसार का कोई भी मोक्ष-शोक का साधन ऐसा नहीं, जो उसकी सेवा में प्रस्तुत न किया जाता हो। उसके थोड़े-से चमारवारों, हाथ की उपार्ई या जादूगर जैसे संलो पर लोग लट्टू हो जाते हैं, किसी को पुत्र दे दिया, किसी को धन दे दिया, किसी को मुकद्दमे में जिता दिया, किसी रोगी को ठीक कर दिया, किसी की बिम्ता दूर कर दी, किसी को उच्च पद या सत्ता का स्थान दिला दिया या किसी को अच्छी नौकरी दिला दी, बग, फिर बना पूछना, साखी लोग उसके पीछे-पीछे



जानता है। वह समय आने पर जीवन के उच्चतम मूल्यों और आदर्शों के लिए अपने प्राण ग्योछावर करने को तैयार रहता है। वह यह भली भाँति जानता है कि मुझे यह मानव-जीवन क्यों और किसलिए मिला है? इसका उद्देश्य क्या है? इसलिए वह धर्म के आदर्शों और सिद्धान्त पर हठ रहते हुए अपना जीवन जीता है। उसकी दृष्टि, श्रद्धा एवं निष्ठा उच्चतम आदर्शों की ओर रहती है। उसका प्रत्येक जीवन व्यवहार सिद्धान्त से अविकल्प होता है। इसीलिए वह अपने जीवन में अर्थ-काम को गौण और धर्म को मुख्य समझता है। धर्म-प्रधान अर्थ-काम ही उसके जीवन व्यवहार में स्थान लेते हैं। धर्म को छोड़कर अर्थ और काम को किसी भी मूल्य पर स्वीकार न करने को वह तैयार रहता है। यही कारण है कि सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति अपना जीवन खाने-पीने, सोने, पढ़-लिख लेने, मन्तान पैदा कर लेने या धन और माधनों का उपार्जन कर लेने में नहीं मोता, किन्तु वह इन्हें मानवीय दुर्बलता समझ कर इनमें ऊपर उठकर त्याग, तप, नियम धन और धर्ममर्पादा से ओत-प्रोत होकर जीता है। योगी भर्तृहरि के शब्दों में ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्तियों का जीवन देखिए—

निन्द्यु मोतिनिपुणा, यदि वा स्तुवन्तु,  
सखीः समाविशतु, गच्छतु वा यथेष्टम् ।  
अर्थं वा मरणमस्तु पुमान्तरे वा,  
म्याप्यात् पथः प्रविशन्ति पदं न धीराः ॥

—नीति निपुण लोग उसके सिद्धान्तनिष्ठ जीवन की निन्दा करें या प्रशंसा करें। सखी चाहे आती हो या यथेष्ट रूप से चली जाती हो, मृत्यु चाहे आज ही आने वाली हो या कुछ-कुछ तक जिन्दगी चले, किन्तु सिद्धान्तनिष्ठ धीर पुरुष न्याय-संगत मार्ग से एक श्दम भी विचलित नहीं होते।

वे धन वा चाहे जितना प्रलोभन हो, डिगने नहीं, काम-वासना के चाहे जितने आकर्षण हो, वे विचलित नहीं होते, पद, प्रतिष्ठा, शक्ता, अथवा अन्य किसी भी भौतिक वस्तु के बढ़े-से घड़े प्रलोभन को वे क्षणमात्र में टुकरा देते हैं। प्रेम और श्रेय दोनों में से एक मार्ग चुनने का जहाँ अवसर उपस्थित हो, वहाँ वे प्रेम को छोड़कर श्रेय को ही अपनाते हैं, चाहे फिर उसके लिए उन्हें जितना ही मूल्य चुकाना पड़े, जितनी ही आर्थिक क्षति सहनी पड़े, जितनी ही मुखमुविद्याएँ छोडनी पड़ें, जितने ही भौतिक प्रशंस के साथ वा त्याग करना पड़े, और चाहे जितना ही कष्ट, दुःख एवं विपदाएँ सहन करनी पड़ें। वे इसके लिए हर दम तैयार रहते हैं, किन्तु शरीरों धुन स्वार्थ के लिए वे अपने सिद्धान्त या परमार्थवाद को किसी भी मूल्य पर छोड़ने को तैयार नहीं होते। जीवन के उच्च आदर्शों और निश्चित सिद्धान्तों को टुकरा कर वे पशुता वा शानकता के मार्ग पर हगिज नहीं बढ़ते। वह स्वप्न में भी सिद्धान्तों के आचरण में समशीला करने को तैयार नहीं होता, चाहे फिर जितनी ही बलिदानियाँ पारें, उसके साथी और मित्र वा परिजन तक उसका साथ छोड़ दें, चाहे अर्थकर न



अश्ववस्था नहीं होनी, जान्ति होने पर माघना भी उन्माहपूर्वक होनी है। अपने जीवन के निर्माण तथा आध्यात्मिक विकास के लिए भी सिद्धान्ताश्रय लेना आवश्यक है।

सिद्धान्त का महाराग लिये बिना क्या कुमारपाल राजा अपनी जीवन नैया लक्ष्य की दिशा में धे मरना था ? कदापि नहीं, वह भटक जाता, और ऐसा भटकना कि फिर ऊँचा उठना कठिन होना।

कुमारपाल राजा की कुलदेवी कष्टकेश्वरी के मन्दिर में नवरात्रि के छवसर पर निरीह पशुओं का निःशक बलिदान होता था। मंदिर के पुजारी ने आग्रह किया—“राजन् ! बलिदान के लिए बकरे, पाँडे आदि का हंग्रजाम कीजिए।” राजा कुमारपाल आचार्य हेमचन्द्र का परमभक्त था, उन्ही से उमने अहिंसा सिद्धान्त का स्वीकार किया था। अहिंसक राजा यह हिंसा जनक कार्य कैसे कर सकता था ? अतः वह इस समस्या के समाधान के लिए आचार्य हेमचन्द्र के पास गया। उन्होंने कुमारपाल को गुप्त राम दी। तदनुसार पुजारी के बहे अनुमार राजा ने ठीक समय पर बकरे व पाँडे कष्टकेश्वरी देवी के मन्दिर में भिजवा दिये। जब बलिदान का समय आया तो राजा अपने कुछ कर्मचारियों को लेकर मन्दिर में पहुँचा और तमाम बकरों और पाँडों को मन्दिर के अहाते में रख करके बाहर में दरवाजे मगवा कर ताले बद करवा दिये। बाहर मग्न पहग बिटा दिया।

इसरे दिन प्रातः जाग होने ही राजा ने स्वयं बहाँ पहुँच कर मन्दिर का ताला मोचा तो सभी पशु मरुगम जीवित थे। राजा ने देवी के पुजारी से कहा—“देवो ! यदि देवी की इच्छा इन मूक पशुओं को था जाने की होनी तो स्वयं मार कर खा जाती, परन्तु उरुने एव भी पशु को नहीं खाया। इसने स्पष्ट है कि देवी को पशुवध करके उनका माम माला विमकुल पसन्द नहीं, पुजारी त्रांग माम माने की अपनी लोभुपता की देवी के नाम पर खोपते हैं। ‘बग आज मे देवी के मन्दिर मे पशु-बलि बढ’ फल और मिष्टान्न मे देवी की पूजा करो।” यी बहकर सभी पशुओं को छोड दिया।

हाँ, तो सिद्धान्त के पालन मे बिनने जीवों को अहमदान मिला, स्वयं कुमारपाल राजा की जान्ति सिनी।

कुछ समय पश्चात् राजा के शरीर में ब्राह्म हो गया तब भी कई राज्याधिकारियों ने उनसे पशुबलि देने को कहा, मगर सिद्धान्तनिष्ठ कुमारपाल राजा ने कहा—मैं निर्दोष पशुओं की हिंसा करके अपने प्राण बचाना नहीं चाहता। मेरे शरीर की बलि हा मरनी है, पर मेरे जीने-जी मेरे राज्य मे पशुबलि नहीं हो सकती। यह है, सिद्धान्तनिष्ठा का अवलम्ब उदाहरण जिनने मुजैश्वर कुमारपाल राजा की अमर और महान् बना दिया। साम्प्रय मे सिद्धान्तनिष्ठा मनुष्य की मरवाई का प्रमाणपत्र है।

आपने बट वृक्ष देखा है न ? वह जितना उपर उठा और फँसा हुआ सीमना है, उतना ही वह जमीन के भीतर घसा हुआ होना है। उसकी जड़ें बायीं सहरी, बायीं सेग घेरनी और बायीं सरया में होनी है। यदि वे न हो, कम हो या कमजोर



पुरिमा ! तुमनेर तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ?

पुरयो ! तुम ही तुम्हारे मित्र हो, बाहर के मित्र को क्यों चाहते हो ?

अपनी शक्ति, क्षमता, सामर्थ्य, प्रामाणिकता और कार्यक्षमता पर विश्वास रखकर ही व्यक्ति सिद्धान्त पर दृढ़ रह सकता है। अगर आप अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं क्षमता को स्वल्प मान लेंगे, अपनी कार्यक्षमता और प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं करेंगे तो स्वयं आत्महीनता के शिकार बनेंगे, दूसरों की दृष्टि में भी दुर्बल और असमर्थ गिड़े होंगे। आत्मविश्वास के बिना आप में आत्मबल नहीं आयेगा और आत्मबल के बिना आप पग-पग पर सिद्धान्त के मामूले में शिथिल होंगे एवं समझौता करने रहेंगे। आत्मविश्वास से सिद्धान्त रक्षा के मामले में जो भी कठिनाइयाँ आयेंगी, उन पर आप विजय पाने चलेंगे। एमर्सन ने कहा—आत्मविश्वास सफलता का मुख्य रहस्य (कारण) है।

महान्मा गांधीजी ने राज्य का आत्मविश्वास था। तभी तो अंग्रेजों की इतनी बड़ी शक्ति के विनाश के अनेके और निःशस्त्र होकर भिड़ गए। अहिंसकपुष्ट से अंग्रेजों का हृदय हिना दिया। स्वराज्य प्राप्ति उनके आत्म-विश्वास का ही फल था यद्यपि उनके साथ अनेको लोगों में इस स्वराज्य में आतृतियाँ दी हैं, परन्तु अगर वे आत्मविश्वास छो देते तो स्वराज्य नहीं मिल सकता था।

सिद्धान्त पथ पर चलते समय वही व्यक्ति स्थिर रह सकता है, जिसमें अदम्य आत्मविश्वास हो। यह संसार नाना प्रकार की विघ्न-बाधाओं, विपत्तियों और विरोधों से भरा है। आत्मविश्वास बाल्मिक में एक शक्तिशाली जहाज है। जो जीवन यात्री को बिटा कर तथा सिद्धान्तहारी-रत्न को मुरझितरूप से साथ लेकर दुर्लभ्य विशाल भ्रमसागर को आसानी से पार कर देता है। सिद्धान्त रक्षा के लिए सबसे बड़ा साधन आत्मविश्वास है। जिसप्रकार हाथ में अनेक शस्त्र होते हुए भी कायर व्यक्ति बोर्डेँ जोहर नहीं दिखाना सकता, उगो प्रकार शरीर, मन, वचन, प्राण, बुद्धि आदि अनेक साधनों के होते हुए भी आत्मविश्वास के बिना मनुष्य सिद्धान्तनिष्ठा का समर्थक नहीं बना सकता। आत्म-विश्वास का अपनी व्यक्ति साधनहीनता की अवस्था में भी अपना पथ प्रदर्शन कर लेता है।

जो व्यक्ति अकेलेपन के या दुःख जाने के भय से गहरे पानी में उतरता ही नहीं वह उम जलानय को पार कैसे कर सकता है ? जो व्यक्ति इस सोच-विचार में पड़ा रहता है कि क्या बच्चे ? किसे बच्चे ? मैं कैसे मंत्रित कर पहुँचूँगा, वह कुछ भी नहीं कर पाता। उसका अर्थ प्रति विश्वास भंग जाता है। उसका जीवन भी निष्प्राण-मग हनप्रभ हो जाता है। बोर्डेँ जेतना या तेज उगमे नहीं रहता। व्यावहारिक कार्य में भी उसके महत्व अछूरे रहने हैं, पारमाविक कार्य में भी। जो राज्य में पड़ा रहता है, उगमे बोर्डेँ बड़ा कार्य नहीं हो सकता, वह जो काम प्रारम्भ करता है, उगमे भी असफल रहता है, जिसमें उगमा रहा मर्दा विश्वास भी नष्ट हो जाता



11

से छूटकारा पाने के लिए धर्मध्वजो योगी ने सती-प्रथा का प्रचार कर रखा था। अतः जयमोहनराय की पत्नी को भी सती होने के लिए उकसाया गया। वह बेचारी किमी तरह तैयार हो गई। चिता में आग लगाई गई। अग्नि की कराश ज्वानाओं का जब शरीर में स्पर्श असाध्य हो उठा तो उसका धर्म टूट गया। वह कराहती हुई अघजली ही चिता में बाहर भागने लगी। विन्दु धर्मध्वजियो और कुटुम्बियो ने बाग का प्रहार कर उसका गिर फोड़ डाला तथा उम अघजली को फिर में चिता में झोक दिया। सती का दर्दभरा विलाप उपरिपत लोगो को सुनाई न पड़े इसके लिए शीत, नगारे और शय बजाए जाने लगे। युवक राममोहनराय की आँसु में इस नुमंगन तूर हृत्प को देख कर आँसू उमड आए। 'अहिंसा परमो धर्म' के सिद्धान्त की हत्या होने देख उन्होंने चिता की परित्रमा करके शमशान भूमि में ही दूड मंकल्प किया जब तक इस तूर नगहत्या की प्रथा का शन्य न कर हूँगा, तब तक धैन से नहीं बँटूँगा।" और मचमुच राजा राममोहनराय ने सती प्रथा कानूनन बन्द करा कर ही दम लिया। ऐसे महत्त्व बात में ही वे अहिंसा सिद्धान्त की रक्षा कर सके।

सिद्धान्तनिष्ठा के लिए तीसरा आवश्यक गुण है—धर्म पर अविचल आस्था। मत्प, अहिंसा आदि धर्म पर अविचल आस्था अथवा अपने कर्तव्य और दायित्व रूप धर्म पर अटल श्रद्धा ही तो मनुष्य सिद्धान्तनिष्ठ रह सकता है। धर्म पर अटल श्रद्धा न हो, तो मनुष्य अपने सिद्धान्त पर टिक नहीं सकता।

रामनगर की राजकुमारी चचलकुमारी के रूप, लावण्य पर बादशाह औरगजेव पिटा हो गया। बादशाह ने चचलकुमारी को अपने हृदय में लाने का विचार बनाया। इसलिए रामनगर के ज़ायेरदार टाकुर के पास जवाहरातो की एक बडी भेंट भेजी, उसे देखकर वह चौंका और जब उसे बादशाह की बडनीयत का पता चलता तो भेंट वापस कर दी। परिणाम यह हुआ कि बादशाह लामो की फौज के साथ चड आया। इधर चचलकुमारी के पिता के पास मुट्टीधर फौज थी, फिर भी वह धर्मरक्षा के लिए सर्वस्व बनिदान देने को तैयार हुं गया।

यह समाचार जब मेकाह के तत्कालीन राजा राजसिंह को मिला तो वह अपने राजदरबारियों के विरोध के बावजूद अत्याचारी का प्रतिरोध करना अपना धर्म समझ कर रामनगर के ज़ायेरदार की सहायता के लिए आ उठा। राजा राजसिंह ने धर्म का आधार लेकर अत्याचारी में मुड किया, विशय धमनिष्ठ राजा की ही हुई।

सिद्धान्तनिष्ठा के लिए चौथा आवश्यक गुण है—परिचरम। जिसमें थोरा साधप्रदायिक बट्टरता का धर्म होगा, ईमानदारी, शीत सत्यता, अहिंसा आदि परिचरम नहीं होगा, वह धर्मिक कभी सिद्धान्तनिष्ठ नहीं हो सकता है। दुनिया में अगर कोई अपना प्रभाव दूगरे पर डाल सकता है तो परिचरम ही है। चाहे मनुष्य को सिद्धा कस मिमी हो, उसमें शक्ति कम हो, उसके पास जमीन जायदाद भी न हो, समाज में उसे कोई साम पदवी प्राप्त न हो, पर यदि उसका चरित्र मुहड एवं उँचा है तो उसका



शापुखरित पुण्य सुख और दुःख में भी समभाव रहता है। चाहे उग पर मकड़ों के पहाड़ टूट पड़ें, और सुख का मानर गहराने लगे, वह अपनी मस्ती में, समना भाव में रहता है। सुख ही चाहे दुःख दोनों ही अथगरी पर उगके भेदों पर प्रगलना अटनेलिया करती रहती है। समनावान व्यक्ति कष्टों और किरनियों में पवराता नहीं, बरिक्त अपने आपकी गन्तुनित रगकर धर्म में वह उनका सामना करता है। उर्दू शापर जगर के गररों में—

“हर आन हैसी, हर आन तुमी, हर अक अभीरी है बाबा।

कष आनम भात फीर टूण, किर क्या दिलगीरी है बाबा ?”

अरुमनात का सानदान पर का एक लडका विपत्ति में फम जाने से शपुओं के हाप में पड गया। उर्दूने उगे सुखाम के रूप में बेच हाया। उगका मानिक बडा निर्दय था। एक व्यापारी उम राय में व्यापार के निमित्त आया करता था। उमने इन सुख की बटोर परिधम करते देगकर पूछा—‘भाई ! तुम्हें बडा दुःख है।’ सुख दुःख में समभावी सुख योना—‘जो पढ़ने नहीं था और भविष्य में गृह्यत नहीं उमके लिए धर्म क्यो चिन्ता की जाए ?’ बर्द क्यो बाद फिर वह व्यापारी इन राय में आया तो उगे पता चलता है कि उम सुख का दालिक मर गया है और वह अने मानिक की गिरी हानत देगकर उमगी पनी और पुत्र का भरण-पोषण स्वयं अरनी बमाई में करता था। व्यापारी ने इन समय उमकी हालत पूछी तो उमने कहा—‘जो परिवर्तनशील है उगे सुख भी क्यो माना जाए और दुःख भी क्यो ?’ दो साल बाद फिर वह व्यापारी आया तो देता कि वह दाग अब उम जिन का अरुमप्य बन गया है। उगके अधीन ब्रहूत में नीकर काम करते हैं। आम-याम के गौरवानों ने उगे गरदार (नेवा) बनाकर वहाँ के हाकुओं को देवा दिया है। उम नेवा के बदले में उगहोने इने बहून-सी जमीन भी दे दी है। ऐसी समृद्ध स्थिति में व्यापारी द्वारा सुख-दुःख समबन्धी प्रश्न पूछे जाने पर उमने पूर्ववत् उत्तर दिया। थोड़े क्यो बाद जब वह व्यापारी इग राय में आया तो देगा कि सुख अब राजा बन गया है। एक विद्वेय मुठ में उमने राजा की महायता बापी पढ़ेंवाई, जिनके वाग्ण राजा ने उगे अरना जानाया और उत्तराधिवारी बना दिया है। व्यापारी ने अब राजा बने हुए उग दाग से पूछा—‘क्यो अब तू सुखी हो गए न ? अब ना सुख लगी, पीली, ऐग आराम करो।’ उमने कहा—‘जो परिवर्तनशील है, उगके भगने में नहीं चलता, मैं ही प्राश्वंन सुख के मूल समभव पर चलकर अपना जीवन व्यनीत करता हूँ।’ उगका मपरमप्य शापर अरवर के गररों में था—

सुमीबत में न पवरा, कर गुजर जैसे बने घंसे।

ये दिन भी जाएंगे एक दिन, के दिन भी आएंगे एक दिन।

समृद्ध सुख में पूनना और दुःख में लड़कना, ये दोनों ही स्थिति समना में भदराने बायी हैं। समना की पगडडी पर चलने वाला सुख और दुःख दोनों में गन्नाय और स्थिति का धनुमच करना है।

[REDACTED]

[REDACTED]

एक बहिः समता को जीवन का शृंगार बनाने हुए बढ़ता है—  
समता जीवन का शृंगार ।

बढ़ने विषमता जिनसे लेगा, क्यों करते बपवहार ? ॥ ध्रुव ॥  
विष का बीज बपन करके, जिनसे अमृत फल पाया ?  
उज्ज्वलता घिन आगम में क्या, धर्म कभी टिक पाया ?  
मेठ मुदगंन के समता से स्थान बने सारार ॥ समता० ॥  
चन्द्रना की हृष्यकृष्ण टूटी, समता को धारा से ।  
मुक्त हो गई देगी लण में, बट्टो को चारा से ॥  
गवमुव समता के पथ पर चलनेवाले साधुको के बाट, मकट और आफने  
कभी टिकी मही रह सकनी । उन्हें समता का सुन्दर प्रतिरूप तो मिनता ही है ।  
विषमप्रगम में भी समता के कारण उनके हृदय में कभी कतुघिनता या मनिनता नहीं  
आती ।

समता-भाषक निन्दा और प्रशंसा, बदनामी और प्रतिष्ठा तथा आलोचना-  
और प्रसिद्धि के लक्षणों में न कभी पहराने और उत्तेजित व दुःख भी नहीं होते हैं,  
और न वे पूजने हैं, गर्वोन्मत्त होने हैं, अभिमान में प्रग्न नहीं होते हैं । वे प्रशंसा,  
प्रतिष्ठा या प्रसिद्धि पाने के लिए सामायित नहीं होने और न ही कोई निन्दा,  
बदनामी या आलोचना का काम करते हैं, बिन्धु तेजोईयो, ईव्यानु, विट्टेवी या  
साम्प्रदायिक उन्माद में उन्मत्त लोग अकारण ही उनकी बदनामी करके जनता की  
दृष्टि में उन्हें नीचा दिखाने, उनकी आलोचना करने सम्राज में उनके प्रति श्रद्धा को  
घटाने तथा निन्दा करने उनके उत्कर्ष या प्रसिद्धि को रोकना चाहते हैं । स्वयं उच्चा-  
चारी, क्रिया पात्र या अध्यात्मयोगी बहूमाने के लिए दूगरो को नीचा, मिथिला-  
शारी या घृणित बनाने की प्रवृत्ति साधु सम्राज में भी बहुत बल पडी है । परन्तु  
सच्चा साधु इस प्रकार की निन्दा, गाली या अपहरणों की बीछारो से अपना रबीकृत  
पथ नहीं बदलता । वह समभाव के आनेप पथ पर चलकर अपनी उन्नत मन स्थिति  
का परिचय देता है ।

एक समभावो साधु बहो जा रहे थे । एक व्यक्ति ने उन्हें देख कर गालियाँ  
दीं—“तू बड़ा नाजायब है, दुष्ट है, गलीब और गदा है ।” समभावो साधु ने शान्ति  
पूर्वक उत्तर दिया—“भाई ! तुम्हारा बहना बिन्धुस सत्य है ।” यों बहूवर के आगे  
बढ़ गये । गाँव के निबट पट्टे तो नर-नारियो को पता चला और वे झूठ के झूठ उनके  
स्वागत के लिए आए । वे नारा लगाने लगे—“घणी लम्मा । छह काया के प्रतिपाप  
ने घणी लम्मा आदि । इन प्रकार का गुणानुवाद सुनकर मुनिवर ने कहा—‘तुम्हारा  
बहना भी सत्य है ।’ मुनि की बात सुनकर गाली देने वाला पशोपेक्ष में पड़ गया ।  
उसने सोचा-‘इहोनि गाली देने पर भी मुझे सत्य बहा और गुणगान करने वालों को  
भी सत्य बनाया । इसमें कुछ रहस्य होना चाहिए ।’









बनना है। भगवद्गीता में भग. १२ विद्याप्रज्ञ के पक्ष में बताया गया है—  
'समनीष्टासमवाचनः' बहु वेदा पार्याण और स्वर्ग पर समभाव रखना है। श्री  
आनन्दपन्तजी ने भी शान्ति की प्राप्ति के लिए यही बताया है—

मान अपमान चित्त सम गणे, सम गणे बन्धक पापाण ने ।  
घण्टक-निन्दक सम गणे, इस्थो होय नू जाण रे ॥शा० ६॥  
सर्व जगज्जन्तु मे सम गणे, सम गणे तुणमणि पाव रे ।  
भुक्ति-संगार वेऽ सम गणे, भुणे भवजग निधिनाय रे ॥शा० १०॥

शान्ति का अविनाशी साधक सम्मान और अपमान के समस्त चित्त में सम रहे,  
मोना और पत्थर दोनों को समान समझे। जब नू इस प्रकार का समभाव हो जाएगा,  
तभी समझना कि मैं शान्तिपिपासु हूँ। जगत् के समस्त प्राणियों को आत्मद्रव्य की  
दृष्टि में समान समझे, निलका और मणि दोनों को पुद्गल की दृष्टि से समान माने,  
भुक्ति में निवास हो या संगार में, प्रतिबुद्ध (वीतराग) भाव में दोनों को समान समझे।  
इस प्रकार समताकर शान्तिभूमि को साधक संगार समुद्र तटने के लिए नौका समझे।

इस प्रकार अमुक-अमुक दोनों में समता को शान्ति प्राप्ति के लिए अनिवार्य  
बनाया है। निरका और मणि, मोना और पाषाण दोनों में समभाव की वृत्ति तभी  
गुदुङ्ग हो सकती है जब समस्तसाधक धनु-नव्य का गृहगई में विन्यस्त करता है, और  
मोना और मणि पर समता न रखकर समताभाव रखता है। समता या आसक्ति ही  
दुःख का कारण है, जब समता या आसक्ति जीवन में ओतप्रोत हो जाती है, तब बहु-  
मूल्य से बहुमूल्य पदार्थ पर के क्रियाएँ होने या संयोग न होने पर उसे रजोगम नहीं  
होगा। उसके पास गृहस्थजीवन में धनसम्पत्ति आदि रहने पर भी वह उसमें निरत,  
आसक्त या मूर्च्छित नहीं होगा वह मर्यादित परिग्रह या नाम-भोग का परिग्रह रखकर  
जीवन की सुखशान्तिमय बना लेगा।

पट्टरपुर में राका और उसकी पानी बाँका दोनों स्वेच्छा से गरीबी धारण  
करने समभावपूर्वक जीवन-यापन करते थे। इनका समभाव इनका सुदुष्ट था कि मोना  
और मिट्टी दोनों को बराबर समझते थे। एकबार राका और बाका लकड़ी काट  
कर जंगल से आ रहे थे, कि रास्ते में अचानक एक मोने की धैनी से राँका के पैर  
का स्पर्श हुआ। राका ने देखा कि बाका की वृत्ति खलित न हो जाए, इसलिए राँका  
उस मोने की धैनी पर मिट्टी डालने लगा। "अचानक बाँका ने देखा तो उसने पूछा  
"क्या कर रहे हैं?" वह जो मोने की धैनी है, उस पर जरा धूल डाल रहा हूँ, ताकि  
उसे देखकर तेरा मन खलित न हो" इसलिए मैं उस पर धूल डाल रहा हूँ।" बाका  
बोली—"बाह! यह धूल तो है ही, धूल पर धूल का क्या बचना?" जितनी समता  
थी, राका-बाका में। वे मोने और धूल में कोई अन्तर नहीं समझते थे।

निर्णयप्रही मन मोना और धूल में समभाव रखते हैं। उनका मन मोना



पहुँचाया। तत्पश्चात् स्टीमर के कर्मचारियों को एच-एच गवर्नो का सन्ता दिया, ताकि वे तैरकर अपनी जान बचा लें। कॅप्टन ने भी अपने लिए एक तख्ता रखा था, जब सब व्यक्ति स्टीमर से बाहर समुद्र में बूढ़कर तपने के सहारे चले पड़े तब कॅप्टन समुद्र में बूढ़ने ही वाला था कि अचानक एक लठका दिखाई दिया, जो स्टीमर के एच बोले में बँटा था। उसे कॅप्टन ने कहा नू अभी तक सुपचाय बचो बँटा रहा ?” उमने कहा—मैं शरीर हूँ। मेरे पाग टिकट के पैने नहीं थे, इमीलिए मैं बिना टिकट चढ़ गया था।” समभारी कॅप्टन ने आने हिम्मे का बचा हुआ एक तख्ता देते हुए कहा—“ले यह तख्ता ! हमके सहारे तैरकर समुद्र पार कर ले।” कॅप्टन अपने निराधार शरीर बचो की परवाह किये बिना ही अपने हिम्मे का तख्ता उम लड़के को दे चुका था, इगनिए अब उसके पाग प्राण बचाने का कोई साधन नहीं था। बोटी ही देर में स्टीमर में पानी भर गया, कॅप्टन ने मन्तोपपूर्वक जल-समाधि ले ली। इसे कहते हैं—व्यक्ति समभाव ! जिस व्यक्ति के जीवन में यह समभाव आ जाता है, वह अपने प्राणों या अभीष्ट गदायों की परवाह नहीं करता। इसीलिए भगवद्गीता में समत्वबुद्धि पर जोर दिया गया है—

गुहृन्मिप्रापुं दामौन मध्वरथ द्वेष्य-बन्धुषु ।  
साधुत्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

—अध्याय ६/२

जो पुण्य मूहत् (निस्वार्थ हितैषी), मित्र, बेरी, उदासीन (निष्पक्ष), मध्वरथ (नटरथ), द्वेषी और बन्धुगणों के प्रति, मज्जन पुण्यो और पापियों के प्रति समबुद्धि—निष्पक्षपान-भाव वाला है, वही समताप्राणियों में विशिष्ट है। इसके बाद जनि समभाव का तम्बर आता है। समत्वबुद्धि वाला व्यक्ति गृहस्थ हो तो वह अपनी जनि-कौम में रहेगा, फिर भी उसकी बुद्धि में जगनपान, छुआछूत, पक्तिभेद आदि का व्यवहार तथा अन्य जनि-कौमों के प्रति भेदभाव नहीं रहेगा। यह पक्षपातरहित होकर प्रदेव जनि-कौमों के प्रति समभाव रखेगा, उनके मौलिक अधिकारों का हनन नहीं करेगा।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का विभाजन होने ही भारत और पाकिस्तान में हिन्दुमुस्लिम दंगे हो रहे थे। गांधीजी की जाति-समभावों आरम्भ यह देखकर निल-मिना टटी। उन्होंने स्वयं नोजाम्नानी जाकर इन कौमों दंगों को शान्त कराया। दोनों कौमों के अग्रगण्यों को समझाया। पाकिस्तान को भारत के सरकारी खजाने से हिन्दू नाणों का विरोध होने हुए भी अमुक धन-राशि दिलायी। यह जनि समभाव का ज्वलन उदाहरण है। छुआछूत, जातपान का भेद तो गांधीजी को छू भी नहीं गया था। बल्कि अग्रगण्योडार के लिए स्वयं वे प्राणप्रण में जुटे थे जातिभेद या वर्णभेद के कारण जो अत्याचार मुद्रबर्णों या हरिजन जाति पर सबनों द्वारा किये जाते थे, उन्हें गांधीजी ने एच-एच करके मिटाने का पुण्यार्थ किया था।



ने गंगा और मौनवी गाद्यु को बड़े सम्मान व प्रेम के साथ तीर्थयात्रा (हज) करने के लिए आगे जाने दिया। मौनवी गाद्यु का हृदय भारत के मन्त्रियों की परधर्म-सहिष्णुता और उदारता की नीति से प्रभावित हुआ। तीर्थयात्रा से लौटने समय फिर मौनवी गाद्यु ने मन्त्री तेजपाल के पास रुककर विधायक लिया। मन्त्री ने प्रेम से अनिधि मन्हार करने उनका हृदय जीन लिया। मौनवी ने अपने गुप्तान के समस्त भारतीय लोगों के परधर्म-सहिष्णु और उदार व्यवहार का बगान किया तो मुलतान ने भी प्रभावित होकर मन्त्री तेजपाल के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ सन्धिपत्र भेजा और अनुशुचि किया कि यह देश आपका है। हम आपके सामन्त हैं। हमें भी अपनी सेवा का अवसर देकर सभी अनुगृहीत कीजिए।”

महामन्त्री तेजपाल के धर्मगमभाव का कितना जबरदस्त प्रभाव मौनवी और गुप्तान पर पड़ा। इसी हम अनुमान कर सकते हैं कि धर्मगमभाव की समतानिष्ठ धार्मिक के लिए कितनी आवश्यकता है। छत्रपति शिवाजी भी परधर्मसहिष्णु थे। उन्होंने कई जगह मुस्लिमों को अपने धर्मस्थान बनवाने के लिए मदद दी थी।

दृष्टि-गमभाव भी समतानिष्ठ जीवन में आवश्यक है। दृष्टि-गमभाव का अर्थ है, दूसरों के दृष्टिकोण पर भी धैर्य एवं सहिष्णुतापूर्वक विचार करना, उन्होंने यह जान किस अपेक्षा से कहा है? तथा किस अपेक्षा तक यह बात यथार्थ है? इस प्रकार निष्पक्ष एवं अनेकान्त दृष्टि से विचार करना दृष्टि समभाव है। आचार्य हेमचन्द्र और हरिभद्रपुरि में दृष्टि समभाव बूट-बूट कर भरा था। जब आचार्य हेमचन्द्र को कुमारपाल राजा ने विरोधियों के कहने में प्रभामपाटण स्थित महादेव मन्दिर के उत्सव पर आमन्त्रित किया, और हेमचन्द्राचार्य के पधारने पर उन्हें कहा गया—महादेव की प्रणाम करिए। वहाँ उन्होंने जैन-दृष्टि और शैव-दृष्टि का समन्वय करते हुए महादेव की स्तुतिपूर्वक नमस्कार किया—

यत्र तत्र समये धोर्षति सोऽस्यभिधया मया तथा ।

वीरदोषकस्तुतः स खेद् एक एव भगवन् । नमोऽस्तुते ॥

त्रिभ-त्रिभ समय में जिन किसी नाम में जो कोई भी महापुरुष हुआ हो, अगर वह रामदेवादि दोषों से रहित है तो वह एक ही है, हे भगवन् ! आपको मेरा नमस्कार है।

इसके पश्चात् श्रीहेमचन्द्राचार्य ने महादेवाष्टक बनाया, जिनमें महादेव का वास्तविक स्वरूप बताया गया है। इसी प्रकार मानन्दुगाचार्य ने भी भक्तान्तर स्तोत्र में वीनराग प्रभु को ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, पुरुषोत्तम आदि के रूप में भी बताया है। योगीश्वर श्रीभानन्दधनजी ने नाम त्रिभ स्तवन में छहदर्शनो को त्रिनेश्वर प्रभु के अंग बताया है।



सुनना, और सोचना है। ऐसे समग्रनिष्ठ साधकों के लिए भगवद् गीता का आशी-  
र्वचन है—

इहैव संश्रितः सर्वो योगे साधये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि गर्मं ब्रह्म, तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

श्रितवा मन साध्ययोग (समत्वभाव) में स्थित है, उन्होंने इसी जीवन अवस्था  
में गारा गगार जीत लिया अर्थात् वे जीने जी गगार में मुक्त हो गए। क्योंकि वीत-  
गम परमात्मा निर्दोष (दोषों में रहित) और सम है। इस कारण वे एक तरह से  
परमात्मा में ही स्थित हैं। इसी लिए गीताम कुत्रक में कहा गया—

‘ते साधुणो जे समयं धरंति ।’

साधु बह है, जो समता का आचरण करे।





मुनता, और बोलता है। ऐसे समन्वयिष्ठ साधको के लिए भगवद् गीता का आशी-  
र्वचन है—

इहैव मैजितः सर्वो येषां माम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म, तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

जिनका मन साम्ययोग (समन्वयभाव) में स्थित है, उन्होंने इसी जीवन अवस्था  
में साग समार जीन निया अर्थात् वे जीने जी गवार में मुक्त हो गए। क्योंकि बीन-  
राग परमात्मा निर्दोष (दोषों में रहिन) और सम हैं। इस कारण वे एक तरह से  
परमात्मा में ही स्थित हैं। इसी लिए गीताम मुक्त में कहा गया—

‘ते साधुषो जे समयं धरंति ।’

साधु वह है, जो समता का आचरण करे।









गुणधर्मों की कामनाएँ मजबूत रहना है, यवन में भी उनी गुणधर्मवाद की प्रणवा परना है, पगीर में भी यह गुण-गुणधर्म एव भांगविनास में प्रवृत्त हो जाना है, उम पर संकट हुयी हो जाने हैं, परिस्थितियों उम पर मगार हो जानी है। यह स्वयं उनी तरह गुणधर्मवादों की तरह वन जाग है, जैसे अनुमान द्वारा पारर जलधारा या हवा पारर धर्म की लपटें प्रबन हो जानी हैं।

धर्म से जरूर भी न डिगने वाला : सत्यवान्

सत्यवान् पुण्य अपने धर्म में एक इन भी विचरित नहीं होना, क्योंकि यह जानना है कि धर्म पर दृढ़ रहने में ही मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास कर सकता है। उपदेशमाला में कहा है—

सत्य-नियमं गुणित्वाणं कर्त्तव्यं जीविष्येति मरणं च।

जीवन्तज्जन्ति पुणा, मया पुण गुणाई जति ॥८४३॥

—सत्य-नियमरूप धर्म में स्थित जीवों का जीना और मरना दोनों ही अच्छे हैं। जीवन रह कर तो वे गुणों का अर्जन करने हैं, और मरने पर सद्गति को प्राप्त होते हैं।

स्वराज्य-आन्दोलन के सिलसिले में एक बार महात्मा गांधीजी और कस्तूरबा आश्रमवादी आए। वे वहाँ के प्रसिद्ध काँग्रेसी भाई के यहाँ ठहरे। वे जमींदार से और कर्मीय खाने से। बापू को जब मानुस हुआ कि मेरे मेजवान काँग्रेसी भाई अफीम खाने हैं, तो उन्होंने उन्हें ममनाया। इस पर उन्होंने गांधीजी के समक्ष यावज्जीवन अफीम न खाने का नियम ले लिया। बापू को उन्होंने यवन दिया कि यह अपने नियम पर दृढ़ रहेंगे। बापू और वा दोनों वहाँ में वर्षों पड़े। इधर उक्त काँग्रेसी भाई की तबियत एक दम बिगड़ी, इनकी बिगड़ी कि सारे शरीर और पेट में धेचनी व पीडा होने लगी। उनकी पत्नी से यह न देगा गया उमने घोड़ी-सी अफीम ले लेने का अनुरोध किया, परन्तु वह किन्ती तरह भी अपना नियम तोड़ने को तैयार न हुआ। आगिर उनकी पत्नी ने बापू को पत्र लिखा कि "आप मेरे पति देव का नियम तोड़ कर अफीम खवन करने के लिए विनिए। मुझे सुहाग-दान दीजिए, अन्यथा इनकी मरणागम्र हानत है"। बापू ने उम पत्र का उत्तर उम आशय का दिया—"बहन! तुम्हारे पतिदेव ने जो नियम लिया है, उम पर दृढ़ रहने हूँ यदि मृत्यु हो जाती है तो हमने बटबर अच्छी बान कौन-नी होंगी? कायरो की तरह मरने की अपेक्षा धर्म-पानन करते हुए की तरह मरना अच्छा है। रही तुम्हारे सुहाग की बात, सो अफीम खा लेने से भी तुम्हारा सुहाग अच्छल नहीं रह सकेगा। मृत्यु तो जिन दिन निश्चय है, उम दिन आएगी ही। इनकी कोई गारटी नहीं कि अफीम खा लेने से तुम्हारे पतिदेव मरेंगे नहीं। मैं तो सुहाग की अपेक्षा धर्म के फल को महत्वपूर्ण मानता हूँ। धर्म पर दृढ़ रहने में दोनों ही मिल सकते हैं। फिर तुम धर्मरानी हो, इसलिए धर्म पर अपने पति को दृढ़ रखना तुम्हारा कर्त्तव्य है।" पत्र पढ़ने ही बहन



धन, पद, सत्ता या अधिकार का मोम दिग्गने पर अपने धर्म से विचलित होता है, वही मत्स्यजान् है, वही मनोबन्धी है, परिगम्यति विजयो है, मातृम और धर्म से मत्स्य है। मातृम से लेगे ही व्यक्तियों को धर्मकोर या दृष्टयो कहा गया है। ऐसे व्यक्तियों के रोम-रोम से, अन्त करण से, संस्कारों से धर्म रम जाता है, उन्हें रिचता ही प्रतीभन दो या दराश्रो, ये धर्म से कदापि च्युत नहीं होते।

कामदेव और अर्हन्क थायक की धर्मदरणा के विषय में पहले बहु युक्त हैं, देवता द्वारा कठोर से कठोर परीक्षा करने पर भी वे धर्म पर अहिम, अटल रहे।

त्रिनदाग श्ययक को धर्मपरीक्षा करने के लिए देव ने उगने समय उसके पास पुत्रो को म्-एक करने मार डाला, और उसे धर्म छोड़ने के लिए विवम किया, मगर धर्मकोर त्रिनदाग थायक ने धर्म कर्तन छोड़ा।

भारतीय इतिहास में राजाकर जैन-इतिहास में ऐसे अनेको उदाहरण मिलते हैं कि वे मत्स्यजान् पुष्ट धर्म की परीक्षा के क्षणों में अपने धर्म से जरा भी इधर-उधर न हुए।

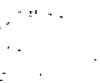
राजगृही निवामी कर्माई कालमौकिक का पुत्र मुलस महामत्री अभयकुमार की संगति से अहिमक और दृष्टयो बन गया। उसने निश्चय कर लिया कि वह कभी पशुवध नहीं करेगा।

मृत्यु के समय उसके पिता कालमौकिक ने अपने पास बुलाकर पूछा—  
 'बेटा ! मेरी एक इच्छा पूरा करोगे ?' मुलस ने कहा—'पिताजी ! अगर मेरे धर्म में यह बाधक न होगी तो मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।' कालमौकिक ने प्रसन्न होकर कहा—'मेरी यह इच्छा है कि मेरी मृत्यु के बाद तुम घर के मुखिया बनो।' मुलस ने उसे स्वीकार किया। कालमौकिक की मृत्यु के बाद मुलस को घर का मुखिया बनाने की रसम अदा की गई। इसी बीच कुलदेवी के सम्मुख एक भेमा लडा करके उसका वध करने को कहा गया, परन्तु मुलस चुपचाप लडा रह गया, उसने तलवार ऊपर न उठाई। मुजुगों ने कहा—'बेटा ! जो मुखिया बनता है, उसे देवी की प्रसन्न करने के लिए रक्तदान करना पड़ता है।' मुलस बोला—'अच्छा ऐसी बात है तो तो यह कहकर उसने अपने पैर पर तलवार चलाई, उससे रून का फव्वारा छूटा, पैर कटकर जमी हो गया।' रोते हुए परिवारों ने कहा—'मुलस ! तुमने यह क्या किया ? भेमे पर तलवार बनाना था।'

मुलस बोला—'जिमी भी पशुवधी का वध करता तो मेरे धर्म के विरुद्ध है, मैं कदापि नहीं कर सकता। देवी को मैंने अपना रक्त दे दिया है। तब से मुझ की धर्म दृष्टा के कारण गारे परिवार में सदा के लिए पशुवध बन्द हो गया।

मातृम से मत्स्यजान् पुष्ट इनके दृष्टयो होने हैं कि वे प्राणों को छोड़ने के लिए तैयार होने हैं, पर स्वीकृत धर्म से विचलित होने को कदापि तैयार नहीं होते। भीतिवार भट्टहरि ने मत्स्य ही कहा है—





ऐसे ही महासहस्र बन्धन में अपना नाग अग्र कर जाने हैं, अपनी यश-सौरभ को वे दिग्-मिग्न में पैना देते हैं। हजारों मानवों को उनकी धर्मदृष्टता युगो युगों तक प्रेरणा देती रहती है। इगीनिग पण्डितनाग जगन्नाथ ने कहा—

“आपद्गत रासु महाशयचक्रवर्ती,  
विस्तारपर्यटनपूर्वमुदारभावम् ।  
जातागुहं हृतमप्यगत समन्ता—  
स्वीकरोरं परिमचं प्रकटीकरोति ॥”

—“महाशयो में चक्रवर्ती सत्यशील पुरुष आपत में पड़ने पर भी अभूतपूर्व उदारभाव फैलाना है। जैसे जाना अग्र भाग में डालने पर भी अपनी लोकोत्तर सुगन्ध चारों ओर फैलाना है, वैसे ही सत्यशील महानुभाव भी अपनी लोकोत्तर यश-सौरभ फैलाना है।”

महासत्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते

ऐसे महामन्व दुजनों के बीच में भी रहकर अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ते। विरोधियों के बीच भी अपनी उत्तम प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। वे तुच्छ स्वार्थियों या भक्तानियों द्वारा चाहे घोर बर्ष में डाल दिये जाएं फिर भी वे अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। जैसा कि नीतिकार कहते हैं—

“घृष्ट घृष्ट पुनरपि पुनरज्ज्वनस्त्वारदग्न्य ।  
दग्ध दग्ध पुनरपि पुनः काचनं कान्तवर्णम् ।  
टिन्न टिन्न पुनरपि पुनः स्वादद चैन्दुदण्डम् ।  
प्राणान्तेऽपि प्रवृत्तिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥”

चन्दन को चाहे बार बार पिना जाय, वह अपनी श्रेष्ठ सुगन्ध को नहीं छोड़ता, मोने को बान्धन आग में जलाया जाय तो भी वह अपने पीने-बमबीने रंग को नहीं छोड़ता, गन्ने चाहे टुकड़े टुकड़े कर दिये जाय, वह मधुर स्वाद देना नहीं छोड़ता। मच है, प्राणान्त का अवग्र आ जाने पर भी उत्तम पुरुषों के स्वभाव में कोई रिवार नहीं आ सता। अथान्—वे प्राणान्त बर्ष आने पर भी अपने मूल स्वभाव को नहीं छोड़ते।

वास्तव में मूल स्वभाव ही धर्म है। अहिंसा आत्मा का मूल स्वभाव है, इसी प्रकार मन्त्र, रैमानदारी, देव-मुह-धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा—बकादारी (निष्ठा) शील, आरिषह वृत्ति, दया, क्षमा, सन्तोष, कन्य, सेवा, दायित्व आदि आत्मा के मूल स्वभाव हैं, आत्मा के निरी गुण हैं, स्व-स्वभाव हैं। सत्यशील पुरुष इस प्रकार के आत्मस्वभाव रूप-धर्म को बर्दापि नहीं छोड़ते।

एक कवि ने कहा है—

सिंहनी सर जाती है, सर डाल को जाती नहीं ।  
आग में जल जाए सोना, पर धमक जाती नहीं ॥



या । आप जो मेरे पिता के समान हैं । आप ही के पुण्यप्रसाद और गन्धर्वपत्नी के मैं आज यह शुभ दिन देग सवा हूँ । मैं ही नहीं, मारा मारवाड आपका चिरश्रेणी रहेगा ।”

महात्म्य बड़ी से बड़ी विपत्ति में पड़कर भी अपने धर्म से घ्युन नहीं होते ।

महात्मनी चन्दनबाणा दागी के रूप में घनाबह मेठ के यहाँ रहती थी । अपना धर्मपालन करती हुई वह युग से रहती थी । श्रेष्ठिपत्नी मूना की आँखों में चन्दना काँटे-नी सटवती थी । उसने एक दिन मौला पाकर चन्दना का गिर मुडवा कर, एक बच्चा पहनावर हाथ-पैरों में हृषकटिपी-वेडिपी टावकर उसे अंधेरे तलघर में पटक दिया । तीन दिन तक उसे मूनी-प्यामी रगो । परन्तु चन्दनबाणा ने अपनी उत्तम प्रकृति से विह्वल होने का परिचय नहीं दिया, बल्कि अपनी मालकिन मूला सेठानी का उपकार ही माना । वह अपने धर्म से जरा भी विचलित न हुई ।

### इधर्मी किसे कहा जाए ?

इस मगार में अनेक प्रकार की शक्ति, प्रकृति और आस्था वाले मानव हैं, वे सभी एक या दूसरे प्रकार से धर्म (अहिंसा, सत्य, ईमानदारी आदि) का आचरण करते हैं, परन्तु हम सोचना है कि इनमें से इधर्मी कौन है ? जिसके जीवन में धर्म की नींव मुदक है ?

एक व्यक्ति है, वह इसलिए धर्म पर चलता है कि उसके सामने इस लोक और परलोक का भय है । उसमें कोई कहता है कि अपने व्यवसाय में तस्करी, चोर बाजारी, बेईमानी, मिलावट, नापतोत में गडबडी अथवा चोरी, जाली, सृष्टपाठ आदि करने बरो नहीं मानामाल हो जाने ? क्या रस्ता है इस धर्म-वर्म में ? इनमें तो नृध्वारा परिवार भूयो मरेगा ।” वह उत्तर देता है—भाई ! बँगे तो धर्म-कर्म कुछ नहीं है, ये चोरी आदि जो कुछ भी शीघ्र धनवान बनने के उपाय हैं, उन्हें अजमाने का भल होता है । पर क्या करूँ ? मन में डर है कि अगर कही पकड़ा गया, तो बर्बाद हो जाऊँगा, इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी । जेल में सडना पड़ेगा, भारी गजा भोगनी पड़ेगी । इसलिए गरबार और समाज का भय जो है । वही मुझे ऐसे भयकर साहसिक कर्म करने से रोकने और धर्म पर चलने का दाध्य करते हैं ।” मतलब यह है, ऐसे व्यक्ति का जीवन यहाँ सरकार और समाज के और परलोक में नरक के दण्ड के भय में धर्म पर चलता है । गहज धर्ममय जीवन नहीं है ।

दूसरा व्यक्ति मिथ्या है, उसमें भी वह यही मवान पूछता है कि “भाई ! इनमें दुनी बरो हो रहे हो ? इस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिए चोरी एक कनीति के कर्षा क्यों नहीं कर लेते ? चोरी, तस्करी, बटमाशी, डाकेजनी, गिरहकटी आदि क्यों नहीं कर लेते ? वह कहता है—भाई ! मन में आता है कि ये सब काम करने अच्छी पंजी दखट्टी कर लूँ, जिनमें बुझाये में मुल में त्रिन्गी बट मके । परन्तु आज समाज में मेरी जो इज्जत है, मुझे लोग ईमानदार कहते हैं, ईमानदार मुझ पर विश्वास



बिम्बानुर राजा ने यह घोषणा कराई है कि जो पुरुष इस बन्धा को मुर्जाती (मूर्खती) कर देगा, उसे वह आधा राज्य और बन्धा देगा। अनेक बला-बुद्दाल लोग आए, परन्तु अर्धों तक विधो को मरतता नहीं मिली। बल गबरे तक अगर बन्धा आँसो से देखने न लगी तो राजा, रानी और बन्धा तीनों बिना में जल कर मर जाएँगे। अतः हमें प्रातः प्रातः वहाँ जाना है। साय ही उम बुद्ध भारद्वाज ने जग्मान्ध को भी दिवने लगे जाए, इसका उपाय बनाने हुए कहा—“देखो ! इस बट के स्वन्ध पर एक बेल लिपटी हुई है, उसका रस, हमारी बिष्टा के माथ मिलाकर अगर कोई अघे की अलि में डाले तो उसकी आँसो में एकदम रोगनी आ जाती है, वह देखने लगता है” यह बात सुनकर राजकुमार पहले तो अपने पर अजमा लेने के विचार में सब पक्षियों के सो जाने पर धीरे में उठा और उगने टटोलता-टटोलता बट के स्वन्ध के पाम पहुँच कर उम टेल का रस भारद्वाज पक्षी की बीट के माथ मिलाकर अपनी आँसो में डाला। यह डालने ही आँसो में एकदम रोगनी आ गई। कुमार हर्षित हुआ। धर्म पर उसकी आस्था और बढ़ हो गई।

अब वह एक द्विविधा में वह बेल और भारद्वाज की बीट दोनों लेकर चम्पानगरी पहुँचने के विचार में भारद्वाज पक्षी की पाम में घुस गया। सुबह होने ही भारद्वाज पक्षी उठा, उसने राजकुमार को तरकास चम्पानगरी में पहुँचा दिया। स्नानादि से निवृत्त होकर कुमार नगर के मुख्य द्वार पर पहुँचा तो वहाँ राजा की घोषणा अकित थी। उसे पढ़कर द्वारदशक ने साय राजा के पाम बहनाया कि “एक विद्यासिद्ध आया है, वह राजकुमारी को दिव्य नेत्र दे सकता है।” राजा ने तुरन्त बुलाकर कुमार का बहुत स्वागत किया। तत्पश्चात् राजा की प्रार्थना पर कुमार द्वारा उम दिव्योपधि का रस राजकुमारी की आँसो में डालते ही उसके दिव्यनेत्र खुल गये। राजा ने प्रमत्त होकर राजकुमारी के माथ कुमार की शादी कर दी, उसे आधा राज्य भी मँप दिया।

इधर सञ्जन के बहून बुरे हाल थे। एक दिन गवाश में बँडे हुए राजकुमार ने उसे पटेहास सहस्रहाने हुए आने देखा। उसने शरीर में जगह-जगह फोड़े पन्मी हो रहे थे। आँसो से पानी डार रहा था, पेट पीठ से चिरक गया था। यह देख करुणा-शील सनिताग ने उसे बुलाया, अपना परिचय देकर उसे नहाना-धुत्कार नये कपडे पहनाए और अपने पाम सुखपूर्वक रहने को कहा।

“एक दिन सञ्जन से कुमार ने ऐसे बुरे हाल होने का कारण पूछा तो उगने कहा—आरबी अनेके छोड़कर मैं आने बड़ा ही था कि राने में खोर मिले। उन्हीं में मेरा सर्वम्ब छीन लिया, मुझे मारपीट कर अधमरा कर दिया। मैंने पाप का फल पा लिया। अब मुझे छोड़ो।” परन्तु कुमार ने दया करके उसे आशवागत देकर रखा। एक दिन सनिताग की रानी ने उसे सञ्जन की सगति करने से रोका। परन्तु सनिताग मरतभाव से उसकी संपर्क करता रहा।

एक दिन राजा ने पापी सञ्जन में पूछा—यह राजकुमार कौन है ? तुम्हारे



भोजन आपको विमाना है। दीवानजी जैन होने के नाते माँग तो गिवा नहीं मलने थे। इसलिए मिठाई का घान लेकर केर के पित्रे के सामने पहुँचे। गिह ने पहुँचे तो मुह पिरा तिया, मिठाई देकर। दीवान गार्ह ने गिह ने कहा—“भार्द ! मैं तुम्हें दूध, मिठाई या रोटी आदि के गिवाय और कोई हिगा मे निपन्न वस्तु दे नहीं मकता। इसलिए या तो उमे स्वीकार करगे, या फिर मेरा माँग स्वीकार करो। दुगरे चिपी पशु का माँग मैं नहीं दे मकता।” कहते हैं, बुद्धिमान गिह मीघ्र ही मिठाई गाने लगा। यह दीवानजी के अहिगा धर्म पर दृढ़ रहने का भमरजार था।

एक जैन व्यापारी के पुत्र ने चिपी को रकम देने की ची सो बहीवानो मे गडबड करके वह बिलकुल निवाल री। साहूकार ने मुकद्मा टायर चिया। न्यायाधीश के समक्ष गब बहिया पेश की गयी। बहियों में तो कोई बजे लेने का उल्लेख नक न था। प्रतिपक्षी के बकील ने कहा—“साहब ! इस व्यापारी का पिता मत्पवादी है, यह अगर वह दे कि मेरे मवबिलन मे इसने कुछ भी रुपये नहीं लिये है तो मैं मुकद्मा वापिस लेने को तैयार हूँ।” न्यायाधीश ने उनके पिता को बुनवाने का निश्चय चिया। इधर बजंदार व्यापारी ने अपने पिता मे बहून अनुनय-चिनय की, झूठ बोलकर अपने को बचाने की। अगर मत्प धर्म पर दृढ़ पिता हम बाल के लिए कतई तैयार न हुआ। आनिर उनके पिता ने न्यायाधीश के सामने सच-गब बयान दिये। बजंदार प्रतिपक्षी उमका पुत्र हार गया। फिर उनके मत्पवादी पिता ने अपने पुत्र को आजीवन कगावात की मत्रा के बदले उमे भविष्य मे कभी ऐसा अमरयाचरण न करने की प्रतिज्ञा दिला कर बहून रकम सजा मे छुटकारा दिनामा।

शील के विषय मे सैठ गुदशन की धर्म दुहना का ज्वलन्त उदाहरण है। ईमान-दारी के विषय मे दुहना का एक ज्वलन्त उदाहरण है, फनोदि वाले सैठ पचचन्द री बोंधर का। अहमदाबाद मे नवामागधुपुरा मे इनकी हाँसमेल करडे की दुबान है। फर्म का नाम है—‘सरदारमल पावृदान।’ यह दुबान अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है। एक बार इन्कमटैबल के अधिकाशियों ने सैठजी की फर्म का टैक्स कम आका। सैठजी के ध्यान मे यह बान आने ही उन्होंने इन्कमटैबल विभाग के कर्मचारियों को बुनाकर कताया कि मेरी फर्म का टैक्स कम आका गया है, इसकी जाँच करें।” उन्होंने जाँच की तो पून निरनी। अउ सैठजी ने वाली का इन्कमटैबल और भी दिया। तब से सैठजी की प्रसिद्धा इनकी बढ़ी कि इन्कमटैबल वाले उनकी फर्म की बहिया नहीं देनने। सैठजी जिनकी इन्कम बना देने उनकी वे मान लेने।

याज्ञवल्क्य ने मग्याम सेते समय अपनी दो पत्नियों मे घन बाँटना चाहा तो मैनेयी ने माफ कह दिया—जिस घन को लेकर मैं अमर नहीं हो मकती, उसे लेकर क्या कहूँगी ? मुझे तो वह आर धर्मरणी घन दीजिए, जिसमे मैं अमररज प्राप्त कर सकूँ।” मचमुच धर्म को प्राप्त करने के लिए घन का प्रतोभन टुगरना बहुत बढ़ी बान है।





## बान्धव वे, जो विपदा में साथी

प्रिय मातृमन्थुओ !

आज मैं आपके सपना ऐसे जीवन की भीमांसा करना चाहता हूँ, जो आपत्ति में, दुःख में, पीड़ा में मानव का साथ दे। मानव, चाहे वह परिचित हो या अपरिचित, पुत्री रहा हो, या दुःखी, ध्यमनी हो या निर्व्यथनी, अपने धर्मसम्प्रदाय का हो या अन्य धर्मसम्प्रदाय का हो, अपनी जाति-कौम का हो या दूसरी जाति-कौम का हो, अपने देश या प्रान्त का हो या दूसरे देश या प्रान्त का हो, अपने गाँव-नगर का हो या अन्य ग्राम-नगर का हो, कोई भी मानव हो, अगर वह विपत्ति में है, असहाय है, दुःखी है, पीड़ित है, रुग्ण है, या किसी भी ब्रष्ट से व्यथित-चिन्तित है और वह पुकार कर रहा है, कराह रहा है, दपनीय स्थिति में है, उस मानव को जो उस समय सहायता देना है, उसकी पीडा को दूर करने के लिए प्रयत्न करता है, वही बान्धव है, वही मन्थु है, वही सहायतादाता है और आपत्ताना है। इसीलिए गौतमकुवक ने दपनीय जीवन सूत्र बनाया गया है—

‘ते बधवा, जे वसणे हुंवनि’

—बान्धव वे ही है, जो दुःख और विपत्ति में सहायक हो।

बान्धव की आवश्यकता क्यों ?

प्रत्येक मनुष्य प्रायः अपने परिवार के साक्षिण्य में ही जन्म लेता है, किसी का परिवार छोटा-सा—केवल एक या दो सदस्यों का होता है और किसी का बड़ा होना है। परिवार से वह सुरक्षा और उपकार की आशा रखता है। समय आने पर परिवार मनुष्य की बड़े में बड़े सबट में रक्षा करता है, उसे सहायता देना है। परिवार का निःस्वार्थ प्रेम ही परस्पर सहयोग और सहायता के लिए एक दूसरे को प्रेरित करता है। परन्तु कई बार परिवार एकदम छोटा होना है, या परिवार में कोई बमाने वाला नहीं होना, या परिवार में महिलाएँ रुग्ण, अशक्त, बूढ़ या घनीपात्रेण करने योग्य नहीं होंगी, बच्चे छोटे होते हैं, अबाध सदस्यों पर कोई आजीविका का भार नहीं डाला जाता, अपना परिवार में दो ही सदस्य हैं, पिता और बच्चा या माता और बच्चा; ऐसे समय में बीमार पिता या बीमार माँ को दूसरे की सहायता



बहा—आओ बहुत । मैं तुम्हारा बन्धु बनना हूँ । तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे धर्म-शील की रक्षा करूँगा और तुम्हारे सुखी जीवन यापन की भी व्यवस्था करूँगा । इनमें से ऐसा कोई भाई नहीं दिखाई देता, जो तुम्हारा उद्धार कर सके ।”

उम नारी की आँगें कृतज्ञता में सजल हो गयी । उसे सम्राट् ब्रह्मरत्न बन्धु के रूप में मिन गए, जिसे उगकी अग्नि बूँड रही थी ।

हाँ तो मैं बह रहा था कि इग मंगार में स्वार्थी पति-पुत्र तो बहुत मिलते हैं, जिनमें आपन और संबट के समय कोई महायना नहीं मिलेगी, मगर बन्धु बहुत बिरसे मिलते हैं, जिनमें हम मंगाररूपी भयंकर वन को पार करते समय मदद मिन सके, जो परम्पर सहायक होकर एक-दूसरे का बोझ हलका कर सके ।

आप और हम मान्ति-गय के पयिक हैं । इस प्रबान में क्या आपको ऐसे बन्धु की अपेक्षा नहीं रहती जो जाति, धर्म निधन-धनिक, निर्बल-सवल आदि का भेदभाव भूलकर प्रेम से आपके सामने विपत्ति के समय सहयोग का हाथ बढ़ा सके, बन्धुभाव बना सके ।

### यों तो आत्मा ही आत्मा का बन्धु है

वैशे अगर दीर्घदृष्टि में सोचा जाए तो जीवनयात्रा में आत्मा के सिवाय हमारा कोई बन्धु नहीं है । आप जानते हैं कि प्रत्येक प्राणी विभिन्न योनियों और यनियों में अनन्त अनन्तकाल में यात्रा करता चला आ रहा है । उसकी इस यात्रा में उसे अपने कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के दुःख और यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं । ऐसी स्थिति में उस प्राणी की आत्मा के सिवाय और कोई बन्धु साथ में नहीं रहता । शरीर, मन, अंगोपान आदि भी तभी तब साथ रहते हैं, जब तक उस प्राणी का आयुष्य है । आयुष्य समाप्त होने ही से एक क्षण भी नहीं रहते । अन्य साथी भी दुःख एवं यातनाएँ भोगते समय प्रायः बहून ही बिरसे होते हैं, जो आपके दुःख भोगने में मदद करते हैं । नरक यति नियंत्रण गति और देवगति में तो वहाँ के जीवों को अपने दुःख स्वयं ही भोगने पड़ते हैं । नरक में कोई दुःख और आपत के समय बचाने नहीं आता, देवलोक में भी परिवार व्यवस्था या समाज व्यवस्था प्रायः नहीं है, वहाँ भी स्वयं ही दुःख भोग करना होता है, तिर्यञ्चों में ऐकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीवों तक में कोई दुःखभोग में महभागी नहीं होता । पचेन्द्रिय जीवों में भी जिन जीवों में इन्द्र-बाधकर रहने की आदत होती है, वे सबके समय कदाचिन् विज्ञा के मददगार हो जाते हैं, परन्तु प्राकृतिक प्रबोधों के समय अक्लम के भ्रूक और साधार वन कर अवेले-अवेले दुःख और पीडा भोगते हैं । रही बात मनुष्य की । मनुष्य परिवार, समाज और राष्ट्र आदि इमीनिए बनाता है कि सबके समय एक दूसरे को महायना दे सके । परन्तु कई अवसरों पर मनुष्य भी दूसरे मनुष्य के बट और पीडा में हाथ नहीं बँटा सकता । जैसे किसी को कोई बीमारी है । बीमारी की हालत में परिवार समाज एवं राष्ट्र वामे उसे दबा दे सकते हैं, बँट, डाक्टर आदि की



है ? माधु-भाष्यी भी घर-बार, परिवार या सामाजिक रिश्ते-जातों को छोड़ कर एक विनाश मानव कुटुम्ब के बन जाते हैं, वहाँ भी वे सध बनाने हैं, उनमें उनमें परस्पर सहायक गुरुभ्राता या गुरुभगिनी होते हैं। वहाँ भी उन्हें तब तक उन पारमायिक बन्धु-बान्धुओं या अनुयायियों की अपेक्षा रहती है, जब तक वे उच्च कथा या उच्च गुणध्यान की भूमिका पर आरुढ़ न हो जाएँ।

एक बार महात्मा ईशा बहून-ने त्रिज्ञानुओं से चिरे हुए उन्हें उपदेश दे रहे थे। सभी विभी ने आकर उनसे कहा—“आपके भाई और माता वहाँ बाहर खड़े हैं, आपसे वे बान करना चाहते हैं। आप जानर उनसे मिल लीजिए।” ईशामसीह बहून ही साधारण भाव से यह उत्तर देकर अपने उपदेश में लग गए—“संसार में मेरा भाई और मेरी माता अन्य कोई नहीं, यही त्रिज्ञानु जनता ही मेरे बन्धु-बान्धव और मेरी माता है। क्योंकि जो मेरे स्वर्गीय पिता के आदेश पर चने, वही मेरा भाई-बन्धु, बहन व माता-पिता हैं। मैं परमात्मा के आदेशों का पालन करने वाले को ही बन्धु-बान्धव मानता हूँ।”

आध्यात्मिक दृष्टि में बान्धव कौन ?

आध्यात्मिक दृष्टि में आत्मा के ६ गुण ही साधक के बन्धु-बान्धव हैं। एक बार एक आध्यात्मसाधक से किसी त्रिज्ञानु ने पूछा—आपके बान्धव कौन हैं ? आप घर-बार, कुटुम्ब-बन्धुता, समाज, जाति आदि सब सामाजिक सम्बन्धों को छोड़ कर साधु बन गए हैं। आपके पास पैसा भी नहीं, नौकर चाकर भी कोई नहीं है, जो आपको सेवा कर सकें और न ही सफट में आपको रक्षा करने वाले कोई रक्षक हैं, फिर बिना बन्धु-बान्धव के आप समाज में गुन से कैसे जी सकेंगे ?” उस महत् साधक ने अपनी मस्ती में उत्तर दिया—

‘सत्य माता पिता ज्ञानं, धर्मो ध्याता, दया सखा ।

शान्ति पत्नी, क्षमा पुत्र. पहुँते मम बान्धवा. ॥”

—“सत्यता मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म भाई है, दया सखा है, शान्ति पत्नी है और क्षमा पुत्र है, ये छह मेरे बान्धव हैं, जो हर सफट में, बाट में मेरा साथ देने हैं, मेरी सहायता करते हैं।”

स्वामी रामतीर्थ जिम स्टोमर में विदेश यात्रा कर रहे थे, जब बन्दरगाह पर जहाज खड़ा हुआ, सभी यात्री उतर रहे थे, तब वे खड़े थे। एक विदेशी यात्री ने साश्चर्य पूछा—“अरे ! आपके पास तो कुछ सामान ही नहीं है। मालूम होना है, पैसों भी आपके पास नहीं रहे हैं। इस समय आपको कौन सहायता करेगा ?” स्वामी रामतीर्थ ने वैशान्व की भाषा में उत्तर दिया—“आप ही मेरे बन्धु हैं, जो मुझे सहायता के लिए पूछ रहे हैं ? आप में सहानुभूति जगी, इसलिए आपसे बढ़कर मेरा इस समय बान्धव और कौन होगा ?” बस, इतना कहना था कि वह विदेशी स्वामीजी का बान्धव बन गया। उसने स्वामी के आवासादि की ध्वरसा तो की ही, उनके



मैंने एक जगह मुई पाश्चर की तस्वीर देखी। उसके नीचे एक वाक्य लिखा था—“मैं आसना घमं, जाति या देश आदि नहीं जानना चाहता। मैं तो सिर्फ आपकी पीछा दूर करना चाहता हूँ।” वास्तव में जो किसी भी भेदभाव या संकीर्णता के बिना नेत्रा दुःख और विपत्ति में पड़े हुए की पीछा दूर करना चाहता है, वही बान्धव है। जो सुगमोग करने में तो सबसे पहले रहे और दुःख के समय किनारा करी कर ले, वह बन्धु की आंठ में धनु है। इसीलिए बन्धु और अवन्धु का अन्तर बनाने हुए स्पष्ट कहा है—

‘स बन्धुर्घो विपन्नानामापबुद्धरणभ्रमः ।  
न तु भीत-परिप्राण-वस्तूनालम्भपण्डितः ॥’

—“बन्धु वह है, जो विपत्ति में पड़े हुए लोगों का विपत्ति में उद्धार करने में समय हो, वह बन्धु नहीं है, जो भय में परिप्राण पाने की अपेक्षा हो, वही तरह-तरह से उपालम्भ देने में पण्डित हो।”

कई लोगों की आदन होनी है कि वे किसी नदी या तालाब में डूब जाने पर तैरने में समय होने हुए भी उसे बाहर निकालकर रक्षा नहीं करते, उसे मंकर से उबारा नहीं, और लगते हैं—उलाहना देने-पहले मैंने तुम्हें कितना मना किया था कि तुम नदी या तालाब में अन्दर मत घुसो, डूबकी मत लगाओ, अब भोगो अपने कर्मों का फल !”

वास्तव में ऐसे लोग जो विपत्ति में पड़े हुए को केवल उपदेश दे देते हैं, या केवल मित्रके पैर देने हैं उनके मामले में सच्चे अर्थों में बान्धव नहीं हैं, वे केवल ऊपर ऊपर से सहानुभूति बनाकर रश्म अदा कर देते हैं। जैसे कई लोग किसी मृत व्यक्ति के यहाँ उसके परिवार वालों के प्रति शोक—सुवेदना व्यक्त करने जाते हैं, वे मौखिक रूप में प्रायः अफमोग प्रगट करके आ जाते हैं। मृतक की पत्नी, या उसके भाई आदि को वे हृदय से प्राय आशवासन या सात्त्वना नहीं देते। वे मृतक के पीछे दुखी या पीड़ित सम्बन्धी को साफ-साफ सात्त्वना या सत्रिय सहायता नहीं देते कि बन्धुवर ! या बहन ! वह मर गया तो क्या हुआ, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारा ही एक छोटा-सा बन्धु हूँ। लो मेरी यह सहायता स्वीकारो !”

एक बार एक ऊँट पर बैठकर एक पण्डितजी और सेठजी कही जा रहे थे। मारवाड़ का रेतीला प्रदेश था। भयकर लू चल रही थी। इस भयकर गर्मी से गरीब मानव झुलम कर लग्न हो जाते हैं। रास्ते में एक जगह एक बीमर ब्रिसे लू लग गयी थी, पड़ा-पड़ा बराह रहा था। उसे किसी ऐसे बन्धु की आशंकायता थी, जो उसे निबटवनीं हॉस्पिटल में ले जाकर उसकी चिकित्सा करा दें। सबसे पहले पण्डितजी की दृष्टि उस पर पड़ी, उनके हृदय में कुछ सहानुभूति जगी। वे ऊँट को रोबकर नीचे उतारे और रोमी के पास जाकर लगे उपदेश श्राफने—“भाई ! अब रोना क्यों





विश्व-बन्धुत्व का दायरा इतना विशाल होने हुए भी मनुष्य उन बन्धुत्व को सर्वोप-अनिमकीर्ण दायरे में बन्द कर देता है, वही परिवार के दायरे में, तो कभी जाति, प्रान्त, नगर, गाँव या राष्ट्र के दायरे में। इसलिए बान्धव की पहिचान कराने हुए नीतिकार कुछ गाम विपद् स्थानों का उल्लेख करते हैं—

“उत्तमे ध्यमने युद्धे बुभिक्षे राष्ट्रविव्लवे ।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।

—धार्मिक या सामाजिक उत्तमों के अवसरों पर जो सम्मिलित होता है या वहाँ की व्यवस्था में भाग लेता है, अपनी सेवाएँ देना है, आफ्न या कष्ट पढ़ने पर जो सब तरह में यथाशक्ति यथावसर सहायता देना है, युद्ध या लड़ाई के समय जो मदद देना है, दुष्काल के समय पीड़ित व्यक्तियों की सहायता देना है, राष्ट्र में विद्रोह या विपद् होने पर जो अपना सर्वश्रेष्ठ शोक देता है, राजदरवार में भी जो दूतित व्यक्त का साथी बनता है, श्मशान में जो मृत व्यक्त के पीछे परिवार की आश्रयान देता है, वही वास्तव में बान्धव है ।

ये सब स्थान बान्धव की परतने के हैं। इन क्षेत्रों में जो किसी व्यक्ति के साथ रहता है, बन्धुत्व को लेकर किसी घायल के घावों पर भरहमपट्टी करता है, वही वास्तव में बन्धु-बान्धव है। एक उर्दू शायर 'नश्वर' ने मानव जाति की सम्मता की निशानी बन्धुता को बनाई है—

यह है सहजीब' आदमी में हो हया ।

दिल में हर लहजा' रहे लौफेल्बा'

जीने का मकसद' हो खिदमत' खल्क' की ।

आदमी के काम आए आदमी ॥

महासती सीता को जब श्रीराम ने धीरे वन में पहुँचा दिया, तब अनेसी, अनहाय और दुःख पीड़ित सीता का कोई भी महायक नहीं था। फिर भी सीता ने आरम्भविश्राम रखकर उस घोर वन में अपने आप की प्रकृति के भरोंसे छोड़ दिया। अचानक वहाँ बयजप राजा आ पहुँचे। उन्होंने एकाकी सीता को इस प्रकार विपन्न अवस्था में देना तो उनका हृदय भर आया। वे स्वयं बन्धु बनकर सीता को अपने यहाँ ले गए और सब प्रकार से कष्ट-निवारण किया।

दुष्कालपीडित मानवों के बन्धु . सेमाशाह

जब पृथ्वी पर कोई प्राकृतिक प्रकोप—भूकम्प, बाढ़, दुष्काल, मूया या महामारी आदि विपत्ति के रूप में होता है तो उस समय अपने देश या प्रान्त के सिवाय दूसरे देश या प्रान्त के लोगों में भी पीड़ितों के बान्धव बनने की अपेक्षा रही।

- |              |                   |                    |
|--------------|-------------------|--------------------|
| १ सम्मता ।   | २ प्रत्येक क्षण । | ३ परमात्मा का डर । |
| ४ उद्देश्य । | ५ सेवा ।          | ६ जनता की ।        |



मास, दोनों के आश्रय स्थानों का सर्वनाश और अग्नि-ज्वालान् पुष्प से देती नहीं जाती।" आगिर सेठ की स्वीकृति पर हमीद साँ ने रणभेरी बजा कर सेना को चारिम सौटाई। सारे शहर में शान्ति हो गई। पर उम शान्ति का मूल्य नगर सेठ की अपनी पीड़ियों ने बमाई हुई सर्वस्व सम्पत्ति देकर चुकाना पडा। नगर सेठ ने मन्गोद की गरम सी कि पैसा भजे ही चना गया, नगर तो बच गया। नगर बन्धु सेठ गुणालचन्द्र की इम निम्बावं बन्धुता और उदारता की जिननी प्रशंसा की जाए, पोरी है।

जैसे शरीर के किसी अंग में पीड़ा होनी है तो मारा ही शरीर बेचैन हो जाता है। पैर में थोट लगनी है तो आँसों में आँसू आ जाने हैं, हाथ उम थोट की दूर करने के लिए प्रयत्न करने लगने हैं, मस्तिष्क को बिन्ता होतो है, उसी प्रकार जिनके जीवन में बन्धुता आ जाती है, वह समाज के किसी भी अंग की पीड़ा में बेचैन हो उठता है। यही आत्मभाव का विस्तार है, जो बन्धु में होता है।

### पारिवारिक जीवन में बन्धुता

कई बार भाई-भाई दोनों पारिवारिक जीवन में भी बन्धुता नहीं निभा पाते। परन्तु जिनके हृदय में बन्धुभाव रहता है, वह अपकार करने पर भी अपने भाई को प्रेम से गुधारने का प्रयत्न करता है। एक प्राचीन उदाहरण लीजिए—

मगध देश में महात्म्य गाँव के मिह और वसंत दोनो सहोदर भाइयों में अत्यधिक स्नेह था। एव के बिना दूसरा रह नहीं सकता था। परन्तु छोटे भाई वसंत की पत्नी उन्हें बार-बार बड़े भाई-भाभी की झूठी निन्दा करके उत्तेजित करने लगी। कई बार बड़े भाई मिह ने उसे स्नेहपूर्वक समझाया, जिनसे वह पुनः स्वस्थ हो जाता।

एक दिन उमकी पत्नी ने इतने बान भरे कि वह उत्तेजित होकर बड़े भाई के पान पहुँचा और अड़ कर बैठ गया—“बाज तो मैं अपना हिम्मा लेकर ही उठूंगा।”

बड़े भाई के बहुत समझाने पर भी नहीं माना, तब विवश होकर उमने सम्पत्ति का आधा हिम्मा छोटे भाई को दे दिया।

परन्तु ऐसे व्यक्ति के पान लक्ष्मी बड़ा टिकती? उसने मारा धन फूँक दिया। फिर भी बड़े भाई ने उसे और धन दिया। लेकिन बार-बार वह धन सो देता और बड़ा-भाई उसे फिर अपनी सम्पत्ति में से कुछ दे देता।

एक दिन अन्नभी एव अकर्मण्य छोटा भाई बड़े भाई मिह पर घुँसे हमला करने लगा। बड़े भाई ने उस प्रहार से तो बचा लिया अपने को। लेकिन उमे स्वार्थी गगार में विरक्ति हो गई। एक अध्यात्म-साधक मुनि ने उमने दीक्षा ले ली। छोटे भाई कर्म ने भी साधन दीक्षा ले ली। दोनों कई जगों तक एक दूसरे के सम्पर्क में



क्या सम्पन्न लोग अपनी सम्पत्ति परलोक में साथ ले जाएंगे ? यदि नहीं तो, ऐसे निर्धन एवं बेरोजगार साधर्मों बन्धु को आफन में या मंकट में देख कर क्या आप में साधर्मोबन्धुता नहीं जागती ?

भारवाड के एक जैन धनिक का हैदराबाद स्टेट के एक शहर में व्यवसाय था। उनकी शुभकामना थी—राजस्थान के कुछ बेरोजगार जैन भाईयो को यहाँ लाकर उन्हें सहाय्य दिया जाए। फलन. राजस्थान से जो भी बेरोजगार स्वधर्मो बन्धु आता, उसे उनकी दूध के अनुसार कपडा, किराना, अनाज आदि की वे दूकान करा देते। अपनी ओर से वे उनको ५००-७०० की मदद कर देते। उससे कहते—देनो, यह धन्धा करो। इसमें जो कुछ भी बचाई हो, उगवा अमुक हिस्सा हमें दे देना बाकी सब तुम्हारा है। दो-तीन साल में जब उनकी दूकान जम जाती तो अपना हिस्सा और रुपये निवान लेते, और उसे स्वतन्त्र रूप से अपना व्यवसाय करने देते। यों लगभग १५० परिवारो को उक्त मेठ ने बसाया, रोजगार धन्धे से उन्हें लगाया और अपनी स्वधर्मोबन्धुता सिद्ध की।

किसी ध्यात में स्वजातिबन्धुता या किसी एक जाति के प्रति बन्धुता होती है। जैसे मीथोनेना मार्टिन सूयर किंग में नीचो जाति को सम्मानित और प्रतिष्ठित करने और उनके अधिकार दिलाने में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। लोग उन्हें मारने-पीटते, गाली देने, पर वे अपने अहिंसा धर्म पर डटे रहकर खुशी-खुशी सहन करते।

बंगाल के फरीदपुर के महाप्रभु जगद्बन्धु ने बूना और डोम जैसी असृष्ट्य और पददलित जातियो को गले लगाकर एक दिन में दुराचारी से सदाचारी बना दिये। वे विद्याधियो को मञ्चरिष बनने की शिक्षा देते थे।

### कुष्ठरोगियों के बन्धु : मनोहर दिवाण

कुष्ठरोग एक भयानक रोग है। कोढ़ का रोग जब लग जाता है तो उसके घरवाले उसे घर में निवान देने हैं, समाज में कोई भी उसे पास बैठने नहीं देता, उसकी छाया से भी पूजा करने हैं। किन्तु मनोहर कुन्दन दीवाण ने गांधीजी से प्रेरणा पाकर वर्षों के पास दत्तपुर में एक कुष्ठ-आश्रम खोला, जिसमें रहकर वे स्वयं कुष्ठरोगियो की सेवा करने लगे।

गचमुच ऐसे बन्धु संसार में मिलने कठिन हैं।

### असहाय महिलाओं के बन्धु—मर्हण कर्वे

समाज में कई विधवाएँ अनाथ एवं असहाय, सक्त एवं अशक्त महिलाएँ हैं, जिनके पास आजीविका का कोई साधन नहीं होता। उन दुःखित-पीड़ित महिलाओं के आँगू पोंछना वारनव में बहुत बड़ी बन्धुता का कार्य है। इस कार्य में वे ही हाथ धामते हैं, जिनमें समाज के द्वारा मिलने वाली पालियो, आनोचनाएँ मरने की हिम्मत हो।



## क्रोधीजन सुख नहीं पाते

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

आज आपके सामने एक विशिष्ट एव निवृष्ट जीवन का चित्र उपस्थित कर रहा हूँ। अब तक १० जीवन मूत्रों पर मैं प्रवचन कर चुका हूँ। आज ११ वें जीवन मूत्र पर विम्वुन विवेचन करना चाहता हूँ। यह जीवन मूत्र है—

**'क्रोधाभिभूया न मुहं सहति'**

क्रोध मे पराजित व्यक्ति मुश्किल नहीं पाते। अर्थात् क्रोधी जीवन सुखी जीवन नहीं है।

**क्रोधी का सुख कपूर की तरह**

मनुष्य चाहे जितना धनसम्पन्न हो, विद्या और बुद्धि में प्रगतिशील हो, सुनसुविधाओं से भी परिपूर्ण हो, धर्मनिष्ठाएँ भी करता हो, उसमें बहिष्ता-सत्य आदि अन्य चाहे जितने गुण हो, नित्य-नियम, जप, माला, तप आदि चाहे जितना करता हो, शरीर भी सुन्दर और स्वस्थ हो, परिवार भी चाहे जितना अच्छा मिला हो, रहने के लिए सुविधाजनक मकान हो, व्यवसाय भी अच्छा चलता हो, परन्तु यदि उसमें क्रोध की आदत है, तो वह इन सब गुणों और सुखों का ह्रास कर देता है। क्रोध रूपी अग्नि मुसकरी वृक्ष को जला डालती है। क्रोधी व्यक्ति के जीवन में जो भी योद्धा बहून सुख प्राप्त है, वह भी क्रोधावेश के कारण कपूर की तरह उड़ जाता है। एक व्यक्ति अपने परिवारवालों को बहुत सेवा करता है, धन उपार्जन के लिए मेहनत भी मूँच करता है अथवा घर का कार्य भी बहुत दिनचर्या से करता है, परन्तु जब उनके शरीर में क्रोधावृत्ति विनाश प्रविष्ट हो जाता है, तब वह क्रोध के आवेश में पागल हो जाता है, जैसे कि एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है—

**'Anger is madness of mind'**

**'क्रोध मन का पागलपन है।'**

जैसे पागल आदमी को अपने हितार्हित का भान नहीं रहना, वह किसी को चाहे जो कुछ कह देता है, समीप्रकार क्रोधी भी अपने बुजुर्गों और महान् पुरुषों को भी क्रोधावेश में चाहे कुछ कह देता है, उनका अविनाश कर देता है, उनकी कोई अदब नहीं रखता।





व्यमन पूरा क्रिये बिना इच्छता नहीं, उगका व्यमन पूरा ही होना चाहिए। डॉक्टरों का कहना है कि अधिक क्रोध करने से मस्तिष्क में रंभे हुए ज्ञानतन्तु पट जाते हैं।

आकगपोडें यूनीवर्सिटी के स्वास्थ्य निरीक्षक डॉ० हेमनबर्ग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि क्रोध के कारण दम वर्प परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों में अधिकांश चिडचिड़े मिजाज के थे। पागतमाने की रिपोर्ट में बताया है कि क्रोध से उदात्त होने वाले मस्तिष्क रोगों ने अनेकों को पागत बना दिया। देखिए क्रोधी मानव शराब पीये हुए मनुष्य की तरह क्या-क्या करता है—

“रागं ह्योर्ध्वपुषि कम्पमनेकहृषं,  
चित्ते विवेकरहितानि च चिन्तितानि ।  
धुगाममारंगमनं समनु खजातं,  
कोपं करोति सहसा मदिरामदश्च ॥”

क्रोध करने वाले पुरुष की आँखें लाल हो जाती हैं, उसके शरीर में अनेक प्रकार का कम्पन होता है, चित्त में विवेकरहित चिन्तन करता रहता है, उन्मत्त पर जाने लगता है, एक साथ क्रोधी पर अनेक दुःख आ पड़ते हैं। मदिरा पीकर उन्मत्त बने हुए की तरह क्रोधी भी उन्मत्त हो जाता है। वह भान ही भूल जाता है कि मैं क्या कर रहा हूँ।

जॉन वेबस्टर (John Webster) कहता है—

“There is not in nature a thing that makes a man so deformed so beastly, as doth intemperate anger ”

“प्रकृति की कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो मनुष्य को इतना विरूप, इतना पाशविक बना दे, जितना कि अनियन्त्रित क्रोध बना देता है।”

श्रीप्रावेश में आकर मनुष्य अपनी बढी से बढी हानि कर बैठता है।

पहाडगज दिल्ली के निक्कटवर्ती एक मोहल्ले में एक व्यक्ति को चिट्फण्ड से १०० रुपये मिले। वह मो रुपये का नोट लेकर घर आया। उसने नोट साकर खाट पर रखा और कुछ बात में लग गया। इतने में उसका एक-दो वर्प का बच्चा खेलता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने सो रुपये के नोट की विलौना समझकर उठा लिया और मुँह में लेकर फाड दिया, जैसा कि छोटे बच्चे किया करते हैं। सो रुपये के नोट को फाडने ही उस मनुष्य ने क्रोध में आकर अपना विवेक खो दिया। तत्काल उसने भोले बच्चे को उठाकर जलते हुए तन्दूर में पटक दिया था, जिससे बच्चा तत्काल मर गया। हाय रे क्रोध ! तू जितना अनपंकर है ! परीमी लोगों ने उस व्यक्ति की बहुत भासना की और मग्मन की। पुलिस उसे गिरफ्तार कर ले गयी।

काम्त्व में क्रोध महाभयकर रोग है। ऐसी महाप्याधि से दूर रहना ही धैर्य-रकर है। जिन्हें क्रोध की बीमारी नहीं लगी है, उन्हें इससे दूर ही रहना चाहिए और



चाहिए। उगमे दूर रहना चाहिए। जिन प्रकार चण्डाल गन्दा होता है, इसी प्रकार श्रीघोषी चाण्डाल मन का गन्दा होता है, वह अनेक दुर्गुणों से घिरा होता है। देविए मनुस्मृति (७/६८) में श्रीघ में पैदा होने वाले ८ व्यसन बताये हैं—

“पेगुन्वं साहसं शोहमीर्ष्याऽभ्रुपार्थदूषणम् ।  
वादनद्वज च पारप्य श्रीघजोऽपि गणोऽप्यः ॥”

(१) चुपली, (२) दुःगाहम, (३) घैर, (४) जलन, (५) दूधरे के गुणों में दोषदर्शन, (६) अयोग्य धन का लेन-देन, (७) बठोर बचन, (८) झूरता का बताव। ये ८ व्यसन श्रीघ में उत्पन्न होने हैं। श्रीघ चाण्डाल जिनमें आ जाता है, वह सम्य-ममाज में आदरणीय नहीं बनता। उसका पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। श्रीघ आदमी का हर जगह से बहिष्कार होता है। अतः जिसके घर में श्रीघ उत्पन्न रहा है, श्रीघ जनित दुर्गुण पुत्रे हुए हैं, वह चाण्डाल है।

चिमनराय पण्डित नदी से नहा कर आ रहा था। मार्ग में वह एक चाण्डालिन में छू गया। घम, एक ही क्षण में श्रीघ में वह आगबबूला हो उठा। उसकी आँखें लाल हो गईं। वह चाण्डालिन पर धरम पड़ा। चाण्डालिन कुछ देर सुनती रही। फिर भी चिमनराय का श्रीघ शान्त न हुआ। लोग इकट्ठे हो गये। चाण्डालिन ने निकट आकर चिमनराय का हाथ पकड़ लिया। लोगों ने उमे टोका—तुमने इनका हाथ क्यों पकड़ा? “वह बोली—यह मेरा पति है। इसे मैं अपने घर ले जाना चाहती हूँ।” अब तो चिमनराय का श्रीघ और बड़ गया। उसने हाथ छुड़ाना चाहा, मगर चाण्डालिन ने छोड़ा नहीं। आगिर पुलिस आई और दोनों को पकड़ कर न्यायाधीश के सामने पेश किया।

अब चिमनराय का श्रीघ शान्त हुआ। उसे अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ। न्यायाधीश ने पूछा—“तुम दोनों क्यों लड़े थे?” चाण्डालिन बोली—“मैं अपने पति को घर ले जाना चाहती थी, मगर ये घम नहीं रहे थे, इसलिए लड़ाई हो गई।”

चिमनराय बोले “मैं इसका पति नहीं हूँ, तब इसके यहाँ कैसे जाता?”

न्यायाधीश—“क्या यह तुम्हारा पति नहीं है?”

चाण्डालिन—“पहले था, मर गया! अब नहीं है।”

न्यायाधीश—“पहले था, अब नहीं, इसका क्या अर्थ है?”

चाण्डालिन—“जब तक इसके घट में चण्डाल था, तब तक यह मेरा पति था, अब इसके घर में चण्डाल निकल गया है, इसलिए अब यह मेरा पति नहीं रहा।”

सबसुच, जहाँ श्रीघोषी चाण्डाल होता है, वहाँ आदमी का हर जगह अपमान होता है। वह बड़ी मुश्किल नहीं पाता, इस चण्डाल के कारण।

दुर्वांग ऋषि ही नहीं, महर्षि थे। महर्षि पर इतना प्रतिष्ठित होता है कि समार का मरने क्षतिज्ञानी और वैभवशाली व्यक्ति भी उसे नमन करता है। परन्तु



शास्त्र में शोध उत्पन्न होने के ४ प्रकार बताये हैं—

- (१) आत्मप्रतिष्ठित—आने आप पर होने वाला,
- (२) परप्रतिष्ठित—दुसरों के निमित्त में होने वाला,
- (३) तदुभय प्रतिष्ठित,
- (४) अप्रतिष्ठित—निमित्त के बिना ही उत्पन्न होने वाला ।

क्रोध पर विजय पाना ही मुष्ट-शान्ति का कारण

क्रोध को शान्तिपूर्वक राहने में अनेक साम हैं । क्रोध आने पर मनुष्य को एक-दम चुप और शान्त होकर बैठ जाना चाहिए । प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो को जब भी क्रोध आता, वह चुपचाप बैठ जाता, और उसके कारणों पर विचार करता था । पाश्चात्य विचारक मेनेका ने क्रोध का इलाज बिलम्ब बनाया है—

“The greatest remedy for anger is delay ”

क्रोध का सबसे बड़ा उपचार बिलम्ब करना है । जब क्रोध आए तब चुपचाप धान्ति में बैठ जाओ । उस समय कुछ न बोलो, न लिखो, न जवाब दो । बन्धुशियम के मन्तानुसार क्रोध आने पर उसके कारणों पर विचार करो ।

जेकरमन ने भी यही कहा है—

“When angry, Count ten before you speak, if very angry, Count a hundred ”

“जब तुम गुस्से में हो, तब बोलने में पहले १० तक गिनो, अगर तुम बहुत ही गुस्से में हो तो सो मन्वा तक गिनो ।”

शास्त्र में कहा है—‘कोहं असच्च कुश्चिज्जा’ क्रोध को विफल बना दो । धैर्य तो जो क्रोध करता ही नहीं वह महान होता है, लेकिन वह भी महान होता है, जो क्रोध को विफल कर देता है । क्रोध की विफलता के ४ चार सूत्र हैं—

- (१) जहाँ क्रोध आए, वहाँ से उठकर एकान्त में घने जाना
- (२) मौन हो जाना
- (३) किसी काम में लग जाना
- (४) एक-दो टाण के लिए श्वास को रोक लेना ।

क्रोध का क्षमन करने के कुछ और भी उपाय हैं—जैसे

(१) प्रतिज्ञा कर लीजिए कि “अपने दुश्मन क्रोध को पाम भी न फटवने दूँगा । जब आएगा तो उसका कटोरना में प्रतिवार कहूँगा ।”

(२) उक्त वाक्यों को लिखकर ऐसी जगह टांग दीजिए, जहाँ आपकी निगाह पड़नी रहे ।

(३) जब क्रोध आए तो अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करिए और कुछ न कुछ पण्ड लीजिए ।



—भरा हुआ पड़ा कभी छनकना नहीं, किन्तु आघा पड़ा अधिच आवाज करता है। विद्वान एवं बुद्धिमान व्यक्ति अभिमान नहीं करता, किन्तु गुणहीन मूर्ख अधिक बकवास करते हैं।

अभिमानि व्यक्तियों का स्वभाव अपने मुह मियामिट्ठू बनने का होता है। साहित्यकार शेक्सपियर के शब्दों में—

‘The empty vessel makes the greatest sound.’

‘खाली बर्तन सबसे अधिक आवाज करता है।’

—वास्तव में अभिमानि व्यक्ति करता कम है, बहूता ज्यादा है। इसीलिए शेक्सपियर अभिमानि के स्वभाव का विक्षेपण करते हुए कहता है—

‘We wound our modesty and make foul the clearness of our deserving, when of ourselves we publish them’

‘जब हम अपनी नम्रता या अपनी योग्यताओं का स्वयं बखान करते हैं, तब हम अपनी नम्रता को धास्यल करते हैं और अपनी योग्यताओं की अमदिप्रताओं को अगुद-अध्विन्न कर देते हैं।’

### अभिमानि का सर्वोद्धत विचार

अभिमानि प्रायः ऐसा विचार किया करते हैं कि मेरे बिना दुनिया का कोई काम नहीं चलता। कई लोग अपने परिवार के मुखिया होने के नाते अभिमान करते हैं कि मेरे बिना परिवार का काम नहीं चलता, मैं न रहूँ, परिवार भूखा मर जायगा। परन्तु यह सब व्यर्थ कल्पना है, किसी के बिना किसी का काम चकता नहीं। सभी को अपने-अपने भाग्य के अनुसार सब कुछ मिलता है। परन्तु अभिमानि व्यक्ति मान लेता है कि मैं ही इसके लिए सहारा हूँ।

हरिदास नाम का एक बनिदा था। उसके परिवार में वह, उमकी पत्नी और दो लड़के, यों चार प्राणी थे। हरिदास फेरी करके किराने का सामान बेचकर अपना गुजारा चलाता था। घर में कमाने वाला वह अकेला ही था, इसलिए उसके मन में यह अभिमान हो गया कि मेरे बिना परिवार का काम एक दिन भी नहीं चल सकता। इसलिए वह स्वयं कस कर मेहनत करता था और लोगों के सामने भी अपनी डींग हाँकना था। एक दिन वह मन्त के सत्सग में पहुँचा। मन्त ने कहा—“दुनिया में किसी के बिना किसी का काम नहीं चलता। यह अभिमान व्यर्थ है कि मेरे बिना परिवार या समाज का काम नहीं चल सकता।” सत्सग पूर्ण होने के बाद जब सभी लोग चले गए तब हरिदास ने मन्त से कहा—“आपने यह कहा कि दुनिया में किसी का काम नहीं चला रहता। परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे परिवार का मेरे बिना एक दिन भी काम नहीं चल सकता। मैं स्वयं इस बात का साक्षी हूँ। मैं दिन भर में जब काम कर पैसे लाता हूँ, तभी काम को रोटी-पानी का





'बालगणो घमण्ड' अशानीजन ही गवं करता है। जो शानी और विवेकी होता है, दुनिया की सुनी आँवों से देखता है, मगर के प्रत्येक पदार्थ की वास्तविकता को गमशाता है, वह बभी गवं या अभिमान नहीं करता। वास्तव में देखा जाए तो अभिमानो के हृदय में ज्ञान का निवास हो नहीं सकता। जितनी के कमीज की जेब फटी हो तो उगमें पैने टिके नहीं रह सकने, नीचे गिर जाएँगे, वैसे ही जितनी व्यक्ति का हृदय अभिमान से फटा पड़ा हो, उगमें ज्ञान और विवेक वहाँ टहरेंगे ? एक विचारक कहता है कि 'अभिमानो अपने आपको सर्वोत्कृष्ट और दूसरे को निहृष्ट मानकर दो गननियाँ करता है।'

अभिमानो के मन में प्रदर्शन की भावना

अभिमानियो का मन इतना महीण एक तुच्छ होना है कि वह दूसरो की तरफ़ी देख कर जलने लगता है। वह दूसरो के घमण्ड को घुणा की दृष्टि से देखता है, दूसरो की प्रतिष्ठा उगे सटवती रहती है, दूसरे का अत्यधिक सम्मान उसे कटि की तरह चुभता है। वह दूसरो को नीचे गिराकर या दुनिया की नजरो में दूसरो को नीचा दिखाकर उसकी नीच पर अपनी प्रतिष्ठा का महल खड़ा करने का प्रयत्न करता है। अह्वारी व्यक्ति ही अधिक बोलने है, वे ही अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए दूसरो से वाद-विवाद करने के लिए कामर कमे रहते हैं। ऐसे अभिमानो एवं अह्वारी लोगों को प्रदर्शन की बीमारी लगी रहती है। ये जब देखो, तब अपनी अह्वारी भूय मिटाने के लिए बोर्ड न बोर्ड आठखर करते रहते हैं। दिखावे से उनको इतना अधिक प्रेम होता है कि अगर उनकी दृष्टि में यह आ जाए कि दूसरा उनसे अधिक बाजी मार रहा है तो वे अपना सबरव खर्च करके, दूसरो से उधार लेकर भी अपना प्रदर्शन करके अपना बहपन दिखाने रहते हैं। अपनी हैमियत नहीं होने पर भी अभिमानो दुनिया की जवान में अधिक शक्तिशाली, धनवान् या बुद्धिमान अथवा चारिषवान् बहलाने के लिए, या दुनिया की नजरो में श्रेष्ठ जँचने के लिए अपना सबरव होम देता है।

एक गरीब स्त्री एक दिन जितनी सेठ के यहाँ गई। सेठानी ने चुड़ा पहन रखा था। वह हाथीदात का बना हुआ और बहुत ही बडिया था। पड़ोमिनें उसे देखने आ रही थीं और सेठानी को बधाइयाँ देने वालों का लाता लग रहा था। गरीब महिला ने जब यह रगड़य देखा तो मन में सोचा—'मैं भी क्यों न हाथीदात का चुड़ा पहनूँ और पड़ोमियो में बधाइयाँ प्राप्त करूँ।' उस कथा था, घर आने ही उगमें अपने पति में कहा—'मुझे हाथी दात का चुड़ा ला दो।' पति ने कहा—'देखती नहीं, घर की परिस्थिति कौनी है ? यहाँ तो पेट भी बडियाई से भरता है और तुम्हें हाथीदात का चुड़ा चाहिए।'

परन्तु पत्नी भी गरीबी और हटी थी। उगमें साफ कह दिया—'चुड़ा लाओगे, तभी चुन्हा खनेगा। मैं चुड़े के बिना रह नहीं सकती।'



## अभिमानी शोक-परायण व चिन्तानुर षर्षों रहता है ?

प्रश्न होता है, अभिमानी को गहन शोक या विन्ना में घमन क्यों रहना पड़ता है ? जैसा कि गीतम ऋषि ने कहा—‘माणसिणो सोपपरा हृषति’ हमारे अनुसार अभिमानी का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि उसे कोई दूसरा आने में बड़कर नहीं जैचना । वह अपने अभिमान की भूख को मिटाने के लिए अहंनिष्ठ चिन्तित, व्यथित और परेशान रहना है । आज अमुक व्यक्ति आगे बढ़ गया है तो कल कोई और उमंगे भी आगे बढ़ जाना है तो अभिमानो को छाती पर माप लोटने लगता है । उसे दूसरों में आगे बड़कर बाजी मारने की सूझनी है । उमंग अहंकार उमंगे चैन-में बैठा नहीं रहने देता । शुभचन्द्राचार्य ने ठीक ही कहा है—

‘सुप्पये मानत एमां विवेकमत्तचोचनम् ।’

अभिमान से मनुष्य का विवेकनेत्र नष्ट हो जाता है ।

धारा नगरी में राजा भोज की कीर्तिपनावा दान-सम्मान के कारण चारों ओर फैल रही थी । उनका एक ममवयस्क मित्र था, सेठ सोमदत्त । वह पर्याप्त धन होने हुए भी पक्का ब्रह्म था । राजा भोज की मनःस्थिति उसके दान, ज्ञान और सम्मान से बसन्त की सी प्रफुल्लित थी, पर सेठ की मन स्थिति थी पतझड़-भी थी, त्रिगमे न पत्ते, न फूल, बेचन टूट ही टूट थे, क्योंकि वृद्धावस्था में सेठ को पत्नी गुजर गई थी, एक लड़का था, वह बेश्यागामी हो गया । पुत्री-जामावा सेठ का धन पाने के लिए उमकी मृत्यु-कामना कर रहे थे । इस कारण सेठ उदासी और बेचैनी का जीवन जी रहा था । एक दिन सख्तकीर्ति मुनि ने जब सेठ ने अपनी मनोव्यथा तथा अपने मित्र राजा भोज के सुख और सन्तोष की बात कही तो उन्होंने कहा—“अगर तू सच्चा सुख और सन्तोष चाहता है तो धन का मोह छोड़ । क्या तेरा संप्रहीत धन तेरे साथ परलोक जाएगा ?”

सेठ—नहीं, गुरुदेव ।”

मुनि बोले—“तो फिर पुत्रादि को जो देय है, उस अन्न धन को देकर शेष धन परोपकार में लगा । जब नू यह कर चुके, फिर तुझे शाश्वत शान्ति की राह बनजेगा ।”

सेठ की वन्द त्रिजोरियाँ और भण्डार खुल गए । सेठ के नाम के विद्यालय, अनाथालय, बिबिन्मालय खुल गए । कवियों और पण्डितों की झोलियाँ भी खुल गयी । फलतः उन्होंने सेठ के गुणगान गाए और महादानी घोषित किया । माल भर में राजा भोज ने जितना दान दिया था, उतना सेठ ने एक हप्ते में दे दिया । अन. सेठ अपने को राजा से ऊँचा समझ बैठा । प्रसमको और भाटों ने उसे दानवीर कर्ण का अवतार बताकर उसकी खूब प्रशंसा की । इन सबका असर यह हुआ कि सेठ गर्व से पूल गया । उसकी खालनाल और बोलचाल में दर्प और अभिमान टपकता था ।



## अभिमानो शोक-परायण व चिन्तानुर षयो रहता है ?

प्रश्न होता है, अभिमानो को मन्त्र शोक या विन्ता मे प्रसन्न क्यों रहना पडता है ? जैसा कि गौतम ऋषि ने कहा—'माणसिणो सोयपरा हर्षति' इसके अनुसार अभिमानो का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि उसे कोई दूरगम जाने मे बडकर नहीं जैवता । वह अपने अभिमान को भूल को मिटाने के लिए अहर्निश चिन्तित, व्यथित और परेशान रहता है । आज अमुक व्यक्ति आगे बढ़ गया है तो कन कोई और उममे भी आगे बढ़ जाना है तो अभिमानो को छाती पर माथ सौटने लगता है । उसे दूरगम मे आगे बडकर बाजी मारने की मूझनी है । उमका जटवार उमे चैन-मे बैठ नहीं रहने देता । शुभवन्त्राचार्य ने ठीक ही कहा है—

'सुष्यते मानस पुमां शिषेदामलचोचनम् ।'

अभिमान से मनुष्य का शिषेदनेप नष्ट हो जाता है ।

धारा नगरी मे राजा भोज की कीर्तिपतावा दान-सम्मान के कारण चारो ओर फैल रही थी । उनका एक ममषयस्क मिय था, सेठ सोमदत्त । यह पर्याप्त धन होते हुए भी परवा बजूम था । राजा भोज की मन-स्थिति उमके दान, ज्ञान और सम्मान से वमन्न की सी प्रकृतिल्लत थी, पर सेठ की मन-स्थिति थी पनजट-शो थी, जिगमे न पत्ते, न फूल, केवन टूट ही टूट थे, क्योंकि दुःखावस्था मे सेठ की पत्नी गुजर गई थी, एक लडका था, वह बेध्यागामी हो गया । पुत्री-जामाना सेठ का धन पाने के लिए उमकी मृत्यु-कामना कर रहे थे । इस कारण सेठ उदासी और बेचैनी का जीवन जी रहा था । एक दिन सबलकीर्ति मुनि से जब सेठ ने अपनी मनोव्यथा तथा अपने मित्र राजा भोज के सुख और सम्नोप की बात कही तो उन्होंने कहा—“अगर तू सच्चा मुग्ध और मन्तोप चाहता है तो धन का मोह छोड । क्या तेरा सप्रहीन धन तेरे साथ परलोक जाएगा ?”

सेठ—नही, गुरुदेव ।”

मुनि बोले—“तो फिर पुत्रादि को जो देय है, उस अश धन को देकर शेष धन परोपकार मे लगा । जब तू यह कर चुके, फिर तुझे शाश्वत शान्ति की राह बताऊंगा ।”

सेठ की वन्द निजोरियाँ और षण्डार मूल गए । सेठ के नाम के विद्यालय, अनायासय, चिन्तिमालय मूल गए । बकियों और पण्डितो की झोलियाँ भी खूब भरीं । फलतः उन्होंने सेठ के गुणगान गाए और महादानी घोषित किया । साल भर मे राजा भोज ने जितना दान दिया था, उतना सेठ ने एक हफ्ते मे दे दिया । अतः सेठ अपने को राजा से जैसा समझ बैठा । प्रसन्नो और भाटों ने उसे दानवीर कर्ण का अडार बलाकर उसकी खूब प्रशंसा की । इन सबका असर यह हुआ कि सेठ गर्व से पूज गया । उमकी चासदाल और झोलियाँ मे दर्प और अभिमान जलता था ।



हाथ में जानी रहती। अब न तो दामियाँ रही और न ही घोड़ी त्रिम पर बैठकर ठाकुर अफीम पाने थे। फिर भी पुरानी रीति के पालन की ठाकुर को हरदम चिन्ता रहती थी। अब वे अपने मकान की एक दीवार को अपनी घोड़ी के रूप में इस्तेमाल करने लगे। जब भी अफीम सेवन करना होना, वे इन दीवार पर चढ़ जाते और ठाकुरानी से कहते—‘अब दामियाँ तो हैं नहीं, तुम ही मुझे अफीम घोल कर दे दो।’ जब ठाकुरानी उन्हें अफीम साकर पकड़ा देती। तब वे दीवार से कहते—‘चल, घोड़ी चल।’ इस तरह अहकारी ठाकुर माहब अपनी पुरानी गमृद्धि की परम्परा को दोए जा रहे थे। वे विवेकपूर्वक उमका परित्याग न कर सके कि अब इन स्थिति में उम परम्परा के पालन की क्या जरूरत है ?

इन ठाकुर माहब की तरह धार्मिक माघको की भी स्थिति भी कुछ ऐसी बनी हुई है कि वे द्रव्य-शेख काल भाष के अनुसार समाजहित को देखते हुए परम्पराओं में उचित संशोधन इसलिए नहीं करते कि इससे पूर्वजों की पुरानी रीति का पालन नहीं होगा, भले ही उनके पूर्वजों ने अपने युग की परिस्थिति अनुसार बहुत-सी परम्पराओं में रद्दोबदल किया हो। परन्तु अहंकार उन्हें ऐसा करने से रोकता है। अह की रक्षा के लिए चाहे उन्हें ठाकुर माहब की तरह दम्भ और दिम्बावा ही क्यों न करना पड़े ?

### अभिमान-रक्षा के लिए दूसरों को नीचा दिखाने की चिन्ता

फिर अहकारी व्यक्ति अपने अभिमान की रक्षा के लिए हर समय मन में चिन्तित रहता है कि मैं सबसे सर्वोपरि कैसे बहलाऊँ ? भले ही उसमें दूसरों से अधिक क्रिया-बल, चरित्र धन न हो। अगर हो तो भी उमका अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में व्यक्त करने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु अभिमानी इस धान को नजरअन्दाज कर देना है और अपने अह (क्रिया, चरित्र या धन आदि के) को व्यक्त करने के लिए दूसरों को नीचा दिखाने या समाज की दृष्टि में नीचा गिराने की किशक में रहना है। जब भी मौका आता है, वह व्याख्यान में, भाषण में, सम्भाषण में अपनी उत्कृष्टता की सीमें हीकता है और दूसरों के चरित्र, शिवा, धर्म या धन, सत्ता आदि की बड़ी आलोचना करके लोगों की दृष्टि में उन्हें घृणापात्र और निम्न-बोदि के बना देना चाहता है। ताकि लोग उमकी प्रतिष्ठा और इज्जत अधिक करें, उमके अनुयायी अधिक बनें।

### सिद्धि का अभिमान मनुष्य को पराजित कर देता है

. कई बार मनुष्य को तप एव जप की साधना से कई लक्षियों, सिद्धियों या शक्तियों प्राप्त हो जाती है। पर उन्हें प्रचाना सहज नहीं है। बड़े-बड़े साधक इस सम्बन्ध में असफल हो जाते हैं। अभिमान के हाथी पर बैठकर धानव अपने आपकी सारी दुनिया से छेष्ट समझने लगता है, तब वह दूसरों को पराजित करने के प्रयत्न





## माया के रहते आत्म-शुद्धि नहीं

शास्त्र में साधकों को आत्मशुद्धि के लिए आलोचना, निन्दना, गर्हणा, प्रायश्चित्त आदि साधनाएँ बनाई हैं, किन्तु उन सबके साथ एक बड़ी शर्त रखी गई है कि आलोचना आदि की साधनाएँ मभी मफय होगी और साधक की आत्मशुद्धि भी तभी होगी, जब वह माया की बँतारणी नदी को पार कर जाएगा। अगर मन में या बचन में जरा भी माया रगकर आलोचना आदि करेगा, तो वह यथार्थ आलोचना आदि नहीं होगी, यथार्थ आलोचना आदि के न होने की स्थिति में आत्मशुद्धि नहीं हो सकेगी। पाप उसके अन्तर में तीसे काटो की तरह सटकने और धुमते रहेंगे, उसके अन्तर में पापो का बोझ बना रहेगा, वह हलका नहीं होगा। इस कारण उसके जीवन में समाधि भाव-शान्ति भाव नहीं आ सकेगा। सूत्र कृपाय सूत्र (श्रु २, अ २, ३-१३) में स्पष्ट बताया है—

“मायी मायं बट्टु षो आलोएइ, षो पडिक्कमेइ, षो निदइ, षो अहारिह तथोरुम्मं पावच्छित्तं पडिक्कजइ ।”

मायी साधक अथार्थ करके उसकी आलोचना, प्रतिश्रमण, आत्मनिन्दा, गर्हणा आदि नहीं करता और न यथोचित तप-कर्म-भय प्रायश्चित्त पट्टण करता है, (वह कृत पापो को छटना चाहता है), उसे अपयश का भय बना रहता है। इस कारण उसकी आत्मशुद्धि नहीं हो पाती।

वास्तव में, अपनी माया या अपने जीवन के किसी भी अंग-प्रत्यंग में प्रचलित माना को तो मनुष्य स्वयमेव पहचान लेता है। उसके लिए किसी दूसरे को बरील बनाने की जरूरत नहीं होती।

## माया तेरे कितने रूप ?

माया यहाँ न तो घन-सम्पत्ति के अर्थ में है और न ही वह ब्रह्म की माया के अर्थ में है। यहाँ मुख्य रूप से माया कपट अर्थ में है। जहाँ-जहाँ कपट, छल, झूठ-फरेब, दम्भ आदि हो, वहाँ-वहाँ माया का वास है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माया अनेक रूपों में मानव जीवन में खेलती रहती है। कभी वह कपट के रूप में आती है तो कभी झूठ नीति और मायाचार के रूप में आती है, वहाँ वह प्रवारणा, घोखेबाजी और बचना के रूप में आती है, तो वहाँ छन, झूठ-फरेब, घोखा-घड़ी, और बेईमानी के रूप में अपनी भावी दिवानी है। कभी वह दुराव और छिाव के रूप में जीवन में प्रविष्ट होती है तो कभी कुटिलता और जटिलता के रूप में। कभी वह दम्भ और पावण्ड के रूप में अवतरित होती है तो कभी वह डोंग और बहुनेबाजी के रूप में। मतलब यह कि माया का एक ही रूप नहीं है वह विविध रूपों में जीवन की माटपजाला में माटक के रगमथ पर आती है।

माया : कपट के रूप में :

कपट माया का दाहिना हाथ है। वह जीवन में जब आता है तो बलुपित कर देता है। कभी-कभी यह कपट दूसरों को बदनाम करने के लिए एक पड्यंत्र के



को बिलकुल रोककर मन ही मन इन्द्रिय विषयों का स्मरण करता रहता है, वह मूडारमा मिथ्याचारी कहलाना है।

जो व्यक्ति बाहर से तो उज्ज्वल पवित्र मान या भक्त के रूप में रहता है, धार्मिक क्रियाकाण्ड भी करता है, भगवान् का जाप भी करता, तपस्या भी करता है परन्तु अन्दर से उगता मन बाग में नहीं है, इन्द्रियों पर उगता नियन्त्रण नहीं है। मन और इन्द्रियों विषयों की ओर दौड़ती रहती है। यह ध्यान तो लगा नेता है, परन्तु बागुने की तरह उसकी दृष्टि या चिन्तन अपने अभीष्ट साप्ताहिक पदार्थों की ओर ही होता है।

बौद्ध जातक में एक कथा है। वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य काल में बोधिमन्त्र चन्दनगोह के रूप में जन्मे थे। वह चन्दनगोह घोर जंगल में रहती थी। एक दिन उगते देखा कि उसके निवास के पट्टीम में ही एक माधु पर्णकुटी बनाकर रहने आया है। अन्त प्रसन्न होकर गोचने लगी—“अच्छा हुआ, मुझे रोज प्रातः काय मन के दर्शन होगा।” वह प्रतिदिन प्रातः काल माधु के दर्शन करने उनकी पर्णकुटी पर जाने लगी।

परन्तु यह माधु मक्का नहीं था, मायाचारी या मिथ्याचारी था। ऊपर से माधु के शिवाकाण्ड करता था, पर उसके अन्दर से साप्ताहिक पदार्थों की लावना थी। एक दिन उस माधु के कुछ सेबक अपने घर में पका हुआ मांस ले आये थे, उसने अहिंसा मर्दाना का विचार न करके यह मांस खा लिया। मांस उसे बहुत स्वादिष्ट लगा, इतना ही मेवको में पूछा—“यह मांस तुम किसका लाये थे?” मेवक बोले—“यह तो चन्दनगोह का मांस था।” चन्दनगोह का नाम सुनते ही माधु के मन में एक दुष्ट विचार स्फुरित हुआ कि जो चन्दनगोह प्रतिदिन मेरे दर्शनार्थ आती है उसे पकड़कर खा कर जाऊँ।” दोनों माधु ने मांस के साथ खान की सामग्री—घी, दही, मिर्च-मसाले आदि इकट्ठे करने शुरू कर दिए। चन्दनगोह के आने का समय हुआ, तब वह माधु पर्णकुटी के द्वार पर हाथ में लाट का बडा-गा मगिया लेकर बैठ गया और मुह में भगवान् का नाम जपन लगा।

परन्तु यह चन्दनगोह भी बच्ची मिट्टी की नहीं थी। रात को चोर लोग उसका उपयोग करने थे, इसलिये हम बचभक्त की माया उससे छिपी न रह गयी। आज उसके चेहरे पर से वह समझ गई कि कुछ न कुछ दान में जाना है। यह माधु मेरे आने के समय में दान में अभी बैठना नहीं है पर आज “।” माधु के रणरंग देखकर वह बागम मुड़ गई और पर्णकुटी के पीछे आ गई। रगोडे में से चन्दनगोह के मांस की गंध आने से वह समझ गई कि यह दोगी माधु मुझे मारने के लिए लाक कर बैठा है। फिर चन्दनगोह पर्णकुटी के अन्दर न घुसकर उठी ही बाहर से ही जाने लगी त्यों ही माधु ने हाथ में लिया हुआ मगिया उग पर फेंका। परन्तु चन्दनगोह तो मरमराहट करती हुई वहीं से चली गयी, उसके हाथ न आयी।



विश्राम हो गया। सेठ से सेन का मूल्य पूछा तो उस धूर्त ने कहा—“सेन का मानिक तो २५ हजार रहता है, पर मैं आपको २० हजार में दिला दूंगा।” इस पर सेठ ने कहा—“१५ हजार में सौदा तय करा दो एक हजार तुम्हें दलानी दे दूंगा। सौदा तय हो गया १५ हजार में। दस हजार तो सेठजी के पास थे, वे उन्होंने दलान को दे दिये। दलान ने कहा—“शेष पाँच हजार आप मामाजी से ले आइए। तब तक मैं इसकी लिला-पट्टी कराता हूँ।” सेठ अपने मामा के पास आये। उनसे ५ हजार रुपये माँगे तो उन्होंने पूछा—“किन्निए चाहिए?”

सेठ ने कहा—“एक जल्दरी काम है। एक सेठ देखकर आया हूँ। वहाँ निधि गड़ो हुई है। १५ हजार में सेन मिल रहा है।” मामा सारी बातें सुनकर दलाल की चानाकी समझ गये। वे तुरन्त सेठ के साथ बुदाली फ़ावड़ा लेकर उस सेठ पर पहुँचे जहाँ निधि बतलाई गई थी, वहाँ खोदने लगे। इतने में आवाज आई—“खोदना रोकते, नहीं तो मैं भस्म कर दूँगा।” साहसी मामा ने कहा—“तुम साप हो तो हम आदमी हैं, मार डालेंगे तुम्हें।” आविर खोदना न रुका तो वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा—“अब मत खोदिये। मुझे चोट लग सकती है। मैंने तो अपने पेट के लिए यह प्लान रचा था।” अब सेठजी की समझ में आया कि यह सब जागसाजी थी। परन्तु दस हजार रुपये जो बचक को दे चुके थे, वे व्यर्थ गये।

इस प्रकार घोसेबाजी और जालसाजी के किस्से आए दिन असबारी में पड़ते हैं। किसी ने सौ रुपये के नोटों के बदले में हजार रुपये के बना देने का लोभ देकर अमनी नोट में लिए और नकली नोट पकड़ा दिये, एक दो को तो दे दिये, बाकी के लोगों के हज़म कर लिये। कोई दस तोले सोने का मी तोला सोना बना देने का बचमा देकर सारा मोना लेकर फरार हो गया। कोई किसी प्रकार से रुपये ठग कर ले गया।

ये सब बचना, प्रनारणा और घोसेबाजी जालसाजी आदि माया की ही बंटियाँ-पोनियाँ हैं। इन्हें अपनाकर तो व्यक्ति ठगी, झूठ-फरेब और धोखाधड़ी करता है। परन्तु ये सब कपट के छद्मे करने वाले व्यक्ति देर-सबेर से उन दुष्कर्मों के फल अवश्य भोगता है, तब वह रोता-पीटता है। दूसरों को ठगने या बचना करने वाला व्यक्ति एक तरह से आत्म-बचना करता है, अपने आरको ही ठगता है। पापचाल्य विचारक जी० बी० (G Bailey) कहता है—

“The first and worst of all frauds is to cheat oneself”

समाम छलकपटों में सबसे निरुपट छलकपट है—अपने आपको ठगना—आत्म-बचना करना।

मी रुपये का नोट देव दुकानदार ने अपने ग्राहक से कहा—“मेरे पास तो ८० रुपये ही हैं।” ग्राहक नोट भुनाने चला गया, क्योंकि दुकानदार को उते साडे दस रुपये ही देने थे। मगर चालाक ग्राहक थोड़ी देर बाद नोट आया और कहने लगा—



थे। सिनेमा भी प्रतिदिन देखते थे। यो १५ दिन बीन गए। पैसा मत्र स्वर्ध हो चुका, इसलिए अब चारों ने अपने वतन की ओर जाने का निश्चय किया। जब वे रवाना होने लगे, तब साँज वाले ने सौ रुपये का बिल उनके गमल रखा। बिल देख कर वे चौंके—'इतना अधिक बिल कैसे हुआ?' साँज वाले ने कहा—'उम समय भोजन की प्लेटों का आडर देना और खाना बहुत अच्छा लगता था, अब बिल चुकाना बड़वा लगता है? परन्तु चारों मायाचारियों के पाम धन समाप्त हो चुका था, इसलिए चेहरा फीका पड़ गया। वे साँज वाले में झगडा करने लगे कि "हम इतना पैसा नहीं देंगे।" इस पर साँज वाले ने कोर्ट में मुकद्दमा दावर किया। ग्यायाधीश ने फैसला दिया कि "जब तक वे साँज का पूरा बिल न चुका दें, तब तक चारों को साँज में नौकरी करनी होगी।"

इसीलिए तो कहा गया—

'मायाविणो वृंति परस्त पेसा'

मायी जन दूमरो के दास बनते हैं।

छत्र कपट करनेवाले को दूमरो की चाटुकारी, चापलूसी, सुशामद, नम्रता, विनय आदि का व्यवहार करना पड़ता है, दूमरे की रचि का पूरा खयाल रखना पड़ता है, मायाचार करने में भी पूरी सतर्कता रखनी पड़ती है, यह सब दामता या गुलामी ही तो है। एक नौकर भी अपने मालिक का इतना ध्यान नहीं रखता, उसे सिर्फ मालिक के द्वारा सौंपे हुए काम से मनलव्य रहता है, परन्तु माया—कपट करने वाले को जिसके साथ वह कपट करना चाहता है, उसके प्रति बहुत ही नम्र, मधुर व सरस व्यवहार करना पड़ता है। अपने भावों को छिपाने, बाहर-अन्दर की भिन्नता को प्रगट न होने देने के लिए काम प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इस प्रकार मायाचारी का पाठ अदा करने के लिए मायी को रातदिन दूमरे की इच्छा रखनी पड़ती है।

माया के फलस्वरूप इस जन्म में दासता

पूर्व जन्म में किसी ने माया छत्रकपट या कुटिलता की हो तो उसका फल इस जन्म में दासता के रूप में मिले बिना नहीं रहता।

पद्मिनी वाराणसी के ब्रह्मठ मेंठ की इकनौती और साहसी बेटी थी। वह बचपन से महा माया का घट थी। माता-पिता को भी झूठ बोलकर, कपट रचकर मृग रखती थी। उनका भी पुत्री के प्रति अत्यन्त मोह था। यौवन अवस्था आने ही 'चन्द्र' नामक एक परदेसी के साथ घर जमाई बन कर रहने की शर्त पर पद्मिनी की शादी कर दी। कुछ अर्से बाद पद्मिनी के माता-पिता चल बसे। अब पद्मिनी और चन्द्र दोनों घर के मालिक हुए। परन्तु मायाविनी पद्मिनी अब स्वच्छन्द और अनाचारी हो गई। पति कहीं बाहर जाता तो वह परपुरुष के साथ अनाचार सेवन करती थी। परन्तु पति के आने पर वह अत्यन्त विनय का ढोंग करती और उसके वियोग में दुःखित हो जाने का ऐसा वर्णन करती कि पति समझता—यह महामत्री है।





ये। गिनेमा भी प्रतिदिन देखने थे। यो १५ दिन बीन गए। पैसा सब खर्च हो चुका, इसलिए अब चारो ने अपने बतन की ओर जाने का निश्चय किया। जब वे रवाना होने लगे, तब साँज वाले ने मौ रपये का बिल उनके गममा रना। बिल देख कर वे चौंके—'इतना अधिक बिल कैसे हुआ?' साँज वाले ने कहा—'उम गमम भोजन की प्लेटो का आर्डर देना और खाना बहुत अच्छा लगना था, अब बिल चुकाना बढवा लगना है? परन्तु चारो मायाचारियों के पास धन समाप्त हो चुका था, इसलिए चेंहरा फीका पढ गया। ये साँज वाले से झगडा करने लगे कि "हम इतना पैसा नहीं देंगे।" इस पर साँज वाले ने कोर्ट में मुकद्दमा दायर किया। न्यायाधीश ने फैसला दिया कि "जब तक वे साँज का पूरा बिल न चुका दें, तब तक चारो को साँज में नौकरी करनी होगी।"

इसीलिए तो कहा गया—

'मायाविणो हृति परस्स पेसा'

मायो जन दूसरो के दास बनने हैं।

छल कपट करनेवाले को दूसरो की चाटुकारी, चापलूसी, सुधामद, नम्रता, बिनय आदि का व्यवहार करना पड़ना है, दूसरे की रुचि का पूरा खयाल रखना पड़ता है, मायाचार करने में भी पूरी सतर्कता रखनी पड़ती है, यह सब दासता या गुनामी ही तो है। एक नौकर भी अपने मालिक का इतना ध्यान नहीं रखता, उसे सिर्फ मालिक के द्वारा मीपे हुए काम से मतलब रहता है, परन्तु माया—कपट करने वाले को जिनके साथ वह कपट करना चाहता है, उसके प्रति बहुत ही नम्र, मधुर व सरम व्यवहार करना पड़ता है। अपने भावो को छिपाने, बाहर-अन्दर की भिन्नता को प्रगट न होने देने के लिए कम प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इस प्रकार मायाचारी का पार्ट अदा करने के लिए मायो को रानदिन दूसरे की इच्छा रखनी पड़ती है।

माया के फलस्वरूप इस जन्म में दासता

पूर्व जन्म में किसी ने माया छलकपट या कुटिलता की हो तो उसका फल इस जन्म में दासता के रूप में मिले बिना नहीं रहता।

पश्चिमी वाराणसी के बमट मंठ की इबलीनी और साइची बेटो थी। वह बचपन से महा माया का पट थी। माता-पिता को भी झूठ बोलकर, कपट रचकर गुम रखनी थी। उनका भी पुत्री के प्रति अत्यन्त मोह था। जीवन अवस्था जाने ही 'चन्द्र' नामक एक परदेशी के साथ घर जमाई बन कर रहने की शर्त पर पश्चिमी की शादी कर दी। कुछ अर्से बाद पश्चिमी के माता-पिता जन बसे। अब पश्चिमी और पण्ड दोनो घर के मानिक हुए। परन्तु मायाविनी पश्चिमी अब स्वच्छन्द और अना-चारी हो गई। पति बही बाहर जाता तो वह परपुण्य के साथ अनाधार सेवन करती थी। परन्तु पति के आने पर वह अत्यन्त बिनय का ढोंग करती और उसके वियोग में दुःखित हो जाने का ऐसा वर्णन करती कि पति समझना—यह महागत्री है।



'धम्मो सुद्धस्त चिट्ठइ ।'

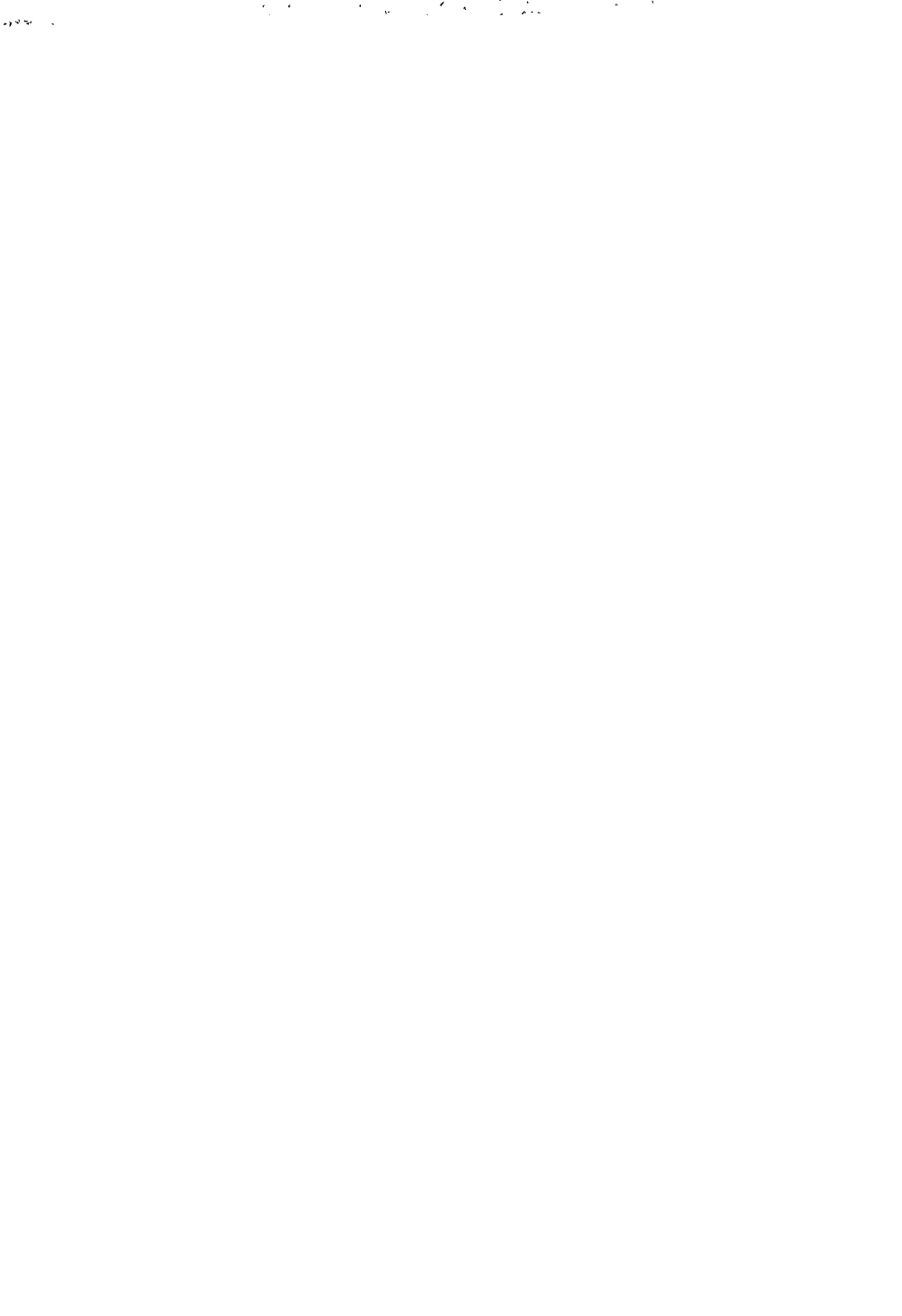
हमारा प्राचीन भारतीय योग शास्त्र तो मन की निष्कपटता पर अधिक जोर देना है । महात्मा ईगा के ये अमर वचन देखिये—

'जिनका हृदय बालकों की तरह पवित्र है, स्वच्छ है, जो सरल और निष्कपट हैं, वे ही ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करेंगे ।'

'स्वच्छ हृदय मायारहित होना है, उसी में परमात्मा का निवास होता है ।'

जो जीवन मायारहित मुरल सारथमय होना है, उस पर पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी विश्वास कर लेते हैं, गरल, स्वभाषी, व्यक्ति की वे सब सेवा करते हैं । सरल स्वच्छ हृदय में पर हृदयस्थ माया का पना नग जाना है, वह व्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में हो तो भी गांधीजी की तरह विरोधी भी उस पर विश्वास करते हैं, वह अज्ञान-शत्रु बन जाता है । झींझरी के हृदय में आए हुए गन्धे विचारों की शुद्धि सरलता से मायारहित होने पर ही हुई । मायारहित होने पर ही आलोचना, निन्दना, गर्हणा, प्रायश्चित्त आदि द्वारा व्यक्ति आत्मशुद्धि कर सकता है ।

साध्य कितना ही पवित्र एवं उत्कृष्ट बयो न हो, यदि उस तक पहुँचने का साधन मायादि दोषों से युक्त पलत है, तो साध्य की उपलब्धि भी असम्भव है । जिस तरह मिट्टी का तेल जलाकर वातावरण को भुगन्धित नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह मायादि दोषयुक्त साधनों के सहारे उच्च सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । वातावरण शुद्धि के लिए लोग सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं, तथैव उत्तम साध्य के लिए साधनों का होना अनिवार्य है, जनसेवा जैसा सार्वजनिक क्षेत्र हो, या राजनैतिक, सामाजिक क्रान्ति हो या व्यक्तिगत साधना, सर्वत्र मायादि रहित शुद्ध साधनों के होने पर सत्य की प्राप्ति होगी । आर्थिक क्षेत्र में भी नीति धर्मयुक्त पुरुषार्थ न करके लोग जुआ, मट्टा, चोरी, मिलावट, तस्करी, मुनाफा खोरी आदि मायायुक्त अनुचित उपायों को अपनाने हैं, वे स्व पर-वत्याण एव आत्मशुद्धि के मार्ग में स्वयं रोड़ा अटकाते हैं, स्वयमेव माया जनित उपायों का आश्रय लेकर या झूठे आढम्बर आदि से प्रसिद्धि एव बाह-बाहो प्राप्त करके कुछ असे के लिए भले ही चमक जाएँ, पर वह तो 'घार दिनों की चाँदनी, फिर अघेरी रात' की तरह अस्थायी चमक हैं, मुझते हुए दीपक की तरह एक बार की भभक है, फिर तो अन्धकार एव पतन है । अतः जीवन का उत्थान चाहने हैं, आत्मा की विशुद्धि की अपेक्षा है, रत्नत्रय की साधना से साध्य—मोक्ष प्राप्ति है, तो मायारहित जीवन बनाइये, वही उत्तम जीवन है । नीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सामाजिक मजबूत निर्जीव पदार्थ आदि नष्टना की आँर ही ले जाता है, इनकी गुनामी में युक्त शुद्ध मायारहित होने पर ही प्राप्ति होता है ।



‘धम्मो सुद्धस्म विट्ठइ ।’

हमारा प्राचीन भारतीय योग शास्त्र तो मन की निष्कण्ठता पर अधिक जोर देता है । महात्मा ईसा के ये अमर वचन देखिये—

‘मित्रता हृदय बातों की तरह पवित्र है, स्वच्छ है, जो सरल और निष्कण्ठ है, वे ही ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करेंगे ।’

‘स्वच्छ हृदय मायारहित होता है, उसी में परमात्मा का निवास होता है ।’

जो जीवन मायारहित मृग्य सत्यमय होता है, उस पर पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी विश्वास कर लेते हैं, सरल, स्वभावी, व्यक्ति की वे सब सेवा करते हैं । मरल स्वच्छ हृदय में पर हृदयस्थ माया का पता लग जाता है, वह व्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में हो तो भी गौधीशी की तरह विरोधी भी उस पर विश्वास करते हैं, वह अज्ञात-मनु बन जाता है । द्रौपदी के हृदय में आए हुए गन्दे विचारों की शुद्धि सरलता में मायारहित होने पर ही हुई । मायारहित होने पर ही आलोचना, निन्दना, गर्हणा, प्रायश्चित्त आदि द्वारा व्यक्ति आत्मशुद्धि कर सकता है ।

साध्य किनता ही पवित्र एवं उत्कृष्ट बयो न हो, यदि उम तक पहुँचने का साधन मायादि दोषों में युक्त गलत है, तो माध्य की उपलब्धि भी असम्भव है । जिस तरह मिट्टी का तेज जलाकर वातावरण को मुगन्धित नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह मायादि दोषयुक्त साधनों के सहारे उच्च नदय को प्राप्त नहीं किया जा सकता । वातावरण शुद्धि के लिए लोम मुगन्धित द्रव्य जलाते हैं, तथैव उत्तम साध्य के लिए साधनों का होना अनिवार्य है, जनसेवा जैसा सार्वजनिक क्षेत्र हो, या राजनैतिक, सामाजिक शान्ति हो या व्यक्तिगत साधना, सर्वत्र मायादि रहित शुद्ध साधनों के होने पर लक्ष्य की प्राप्ति होगी । आर्थिक क्षेत्र में भी नीति धर्मयुक्त पुरुषार्थ न करके लोम धुआ, मट्टा, खोरी, मिनाबट, तम्करी, गुनाफा खोरी आदि मायायुक्त अनुचित उपायों को अन्नमाने हैं, वे स्व पर-वत्पाण एव आत्मशुद्धि के मार्ग में स्वतः रोड़ा अटवाने हैं, स्वयंभय माया अनिन उपायों का आश्रय लेकर या झूठे आडम्बर आदि से प्रसिद्धि एवं बाह-बाहो प्राप्त करके कुछ अर्थों के लिए मने ही चमक जाएँ, पर वह तो ‘चार दिनों की चाँदनी, फिर अछेरी रात’ की तरह अस्थायी चमक हैं, बुझते हुए दीपक की तरह एक बार की चमक है, फिर तो अन्धकार एव पतन है । अतः जीवन का उत्थान चाहते हैं, आत्मा की विशुद्धि की अपेक्षा है, रत्नत्रय की साधना में माध्य—मोक्ष प्राप्त करने की तत्काल है, तो मायाग्रहित जीवन बनाइये, वही उन्नत जीवन है । मायायुक्त जीवन तो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सामाजिक मजीब-निर्जीव पदार्थ आदि की गुलामी और परतन्त्रता की ओर ही ले जाता है, इनकी गुलामी से मुक्त शुद्ध स्वतन्त्र जीवन तो मायारहित होने पर ही प्राप्त होता है । -



यहाँ मनुष्यों को नरक-मार्ग या स्वर्ग के लिए बिना-बिना-पर या दुःख-पर बुनाया जाता है, वह नरक है।

आदमक के कई विभिन्न लोग नरक को स्वयं समझते हैं, वे कहते हैं कि लोगों को स्वर्ग के लिए कुछ बुद्धिमत्ताओं से नरक मार्ग पर चलाया है और जब-जब नरक का हीसा बना कर उन्हें नरक के काम करने से रोक्ने है। परन्तु नरक न होना तो हमने भयंकर पापकर्म करने वालों को, जिनको यहाँ किसी प्रकार की सजा नहीं मिली है, दूसरा लोक न हो तो सजा कहाँ मिलेगी? मनुष्य की जीवन यात्रा केवल इन लोकों में ही तो समाप्त नहीं हो जाती, वह अनेक जन्मों तक चलती है, उन जन्मों की यात्रा में कर्मकर्म करने वालों में से जिन लोगों ने भयंकर कर्म किये हैं, उन्हें जहाँ पढ़ाई करना पड़ता है, वह है नरक। नरक एक ऐसा पड़ाव है, जहाँ उन कर्मियों लोगों को अपने कर्मों की भयंकर सजा मिलती है। अगर ऐसा न हो तो मरकर्म करने वाले और दुःखकर्म करने वाले दोनों का जन्म एक ही गति में होगा। फिर मरकर्म करने और दुःखकर्म करने की प्रेरणा कैसे मिलेगी? यह तो सारी अस्पष्टता हो जाएगी और कर्मफल का सिद्धान्त ही झूठा हो जाएगा। इसलिए नरक का अस्तित्व वास्तविक है, गल्प नहीं है। जो लोग ऐसे साहजिक के काम करते हैं, जिनसे दूसरों की प्राण-हानि होती हो, दूसरों का दिल दहल जाता हो, दूसरों के मन में भयंकर प्रतिक्रिया उत्पन्न होती हो, अनेक जीवों का सहार होता हो, जैसे चोरी, बर्बाद, लूट, बलात्कार, शिकार, पशुवध, मांसाहार, पक्षिग्रहण, गुरु अपनी कुर महत्वाकांक्षाएँ, आदि सब नरक-मार्ग के कारणभूत साहजिक हैं।

सभी धर्मों में नरक को एक या दूसरे प्रकार से, अपने-अपने ढंग से ही भाषा में माना है। सभी धर्म शास्त्रों में कर्म करने वालों के लिए नरक का विधान किया गया है।

परन्तु जो लोग यह समझते हैं, कि नरक मिलना होगा, जब मिलेगा या नहीं भी मिले, यहाँ हम बेरोक-टोक साहजिक कर्म करने रहें, उनमें हमारा भगवत्प्रेम कासा है, यहाँ तो कोई हमें नरक नहीं दे सकता, वे लोग भी भयंकर धम में हैं। जो यहाँ नरक के काम करते हैं, उन्हें भविष्य में तो नरक मिलने ही भागा है, परन्तु यहाँ भी प्रायः उन्हें नारकीय जीवन बिनाना पड़ता है। उनका जीवन हमारा तुलना, रोग, शोक और भय से आजाग्न हो जाता है कि उन्हें हम जीवन में ही नरक की ही पीड़ा—असह्य मानना और बेदना मिल जाती है। धर्म, चोरी, बर्बाद, बलात्कार और मुक्तिपात्र होने हुए भी वे नारकीय जीवन का अनुभव करते हैं, या तो धर्म में गड़-गड़ कर चलते हैं अथवा अगाध धर्म में विम-विम कर हम सोच वि विधा होने हैं अथवा कुटी तरह में उनकी मीन होती है।

अतः ऐसी यात्रा एवं पीड़ादायक नरक-मार्ग ही जन्म में ... ही है अथवा मिल जाती है। एवं नारकीय बिनायक कहना है।





वह गोरा नहीं, बाना किरानी था। प्रारम्भ में वह एक शकवाने में बाढ़ था। पड़ोसियों के जानवर घुरा लेना, और चटकर जाना, जगता प्रारम्भिक कार्यक्रम था। बाद में उगने अमीरों की शासक, जुआ और सड़कियाँ मनाई करने का धन्य अनाया। एक कुम्भान तम्बर मीकमीन के साथ मीठ-मीठ करके वह राजनीति में घुसा और हृदयव्येवाजो के सहारे शासनाध्यक्ष बन गया। उगने विभिन्न प्रकार की तिकडम-बाजी करके करोड़ों की सम्पत्ति बरमावी और पानी की तरह बिनासिना एव रंग-रैलियों में बहा दी। उग राज्य में चन् रही अपराधी प्रवृत्तियों में उसका छिया हृदय रहता था और उसमें वह भारी बरमाई करता था।

महत्वाकांक्षी और लोभी नुजिलो ने संकेत करके अपने राज्यों में गिफें दो नारे निवशये—एक ईश्वर का, दूसरा नुजिलो का। वह अपने राज्य में अपने को ईश्वर के समकक्ष कहलवाना था। एक बार नुजिला ने समाचार पत्रों में अपनी मृत्यु का समाचार छया दिना, फिर कुछ दिनों बाद वह प्रकट हो गया। उसकी मृत्यु पर जिन-जिन लोगों ने शुश्रूषा मनाई थी, उनका पला सगाकर उसने उन सभी लोगों को मौत के पाट उतरवा दिया।

सामान्य लोभ के साथ उसकी विद्वान महत्वाकांक्षा का सबसे नुगस कुकृत्य कुछ ही वर्षों पहले समाप्त ने जाना, जो नादिरशाह, चगेजवाँ और हवाकू के कुकृत्यों की भी मान कर गया।

बान तनिक-मी थी। नुजिलो की एक रत्न 'डोना आयसवेल माये' ने उसे साना मार्ग कि उसके कृषि फार्म के पेड़ों की पत्तियाँ चरवाहे लोग अपने जानवरों को चरा देने हैं और वह शासक होने हुए भी उन्हें रोक नहीं पाता।" ध्यंग करारा था। नुजिलो ने उसी क्षण दृष्ट प्रेमिका को आश्वामन दिया कि 'वह चरवाहो के पूरे गाँव का ही अस्तित्व मिटा देगा।' दूसरे दिन वह सेना को साथ लेकर उस गाँव 'ऊप्रानामि' पहुँचा और वहाँ के समस्त लोगों नागरिकों का कत्ले आम करा दिया। मर-मारी, बानक-बूढ, सभी घरों से पकड़कर लाये जाते और रस्सों में बँधे उन लोगों को धोवरी कुन्हाड़ियों से सक्की धीरने की तरह काट डाला गया। गिरजाघर में छिपे हुए अचोव बानको तक को उसने नहीं छोडा। वहाँ के निवासी कुल २५०० लोगों का उसने अपनी घूर महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए सफाया करवा दिया। एक भी शीवित नहीं बचा। वह सारा इलाका लालों में पट गया और जमीन रक्त रक्षित हो गई।

इस प्रकार २५०० निरीह निरपराध मनुष्यों के नुगम वध की भिमान कम से कम इस शताब्दी में लो नहीं मिलती।

कहते हैं, उगने अपनी छोटी-सी जिन्दगी में अपने बालों में भी अधिक सख्या में कुहम्य बिये होंगे। ये किसी अभाव या संकट के कारण नहीं, किन्तु अपनी विद्वान महत्वाकांक्षा एवं लोभवृत्ति में प्रेरित होकर बिये थे।



वह गीरा नहीं, बाना किरानी था। प्रारम्भ में वह एक हाथलाने में बाबू था। पड़ोसियों के जानवर घुरा लेना, और घटकर जाना, उनका प्रारम्भिक कार्यक्रम था। बाद में उनमें अमीरों को शागव, जुआ और तड़कियाँ मन्पाई करने का धन्धा बननाया। एक कुत्थान तस्वर भैरवीन के साथ माँट-गाँठ करके वह राजनीति में घुसा और ह्यवगंधबाजी के महारे शागनाध्वज बन गया। उनमें विभिन्न प्रकार की तिकड़म-बाजी करके बरोडों की सम्पत्ति बमानी और पानी की तरट् किलागिता एवं रग-रेलियो में बहा दी। उम राज्य में चल रही अपराधी प्रवृत्तियों में उनका छिना हाथ रहना था और उनमें वह भारी बमारी करना था।

महत्वाकांक्षी और लोभी नुजिलो ने संकेत करके अपने राज्य में गिर्क दो रे मिलगये—एक ईस्वर का, दूसरा नुजिलो का। वह अपने राज्य में अपने को स्वर के समरुज कहलवाना था। एक बार नुजिला ने समाचार पत्रों में अरनी खु का मयाचार छगवा दिया, फिर कुछ दिनों बाद वह प्रकट हो गया। उसकी खु पर त्रिन-त्रिन लोगो ने खुशियाँ मनाई थी, उनका पता लगाकर उसने उन सभी लोगों को मोन के घाट उतरवा दिया।

सामान्य लोभ के साथ उसकी विहृत महत्वाकांक्षा का सबसे नुशम कुकृत्य छ ही बगैँ पहले सनार ने जाना, जो नादिरगाह, खगेत्रवाँ और हनाकू के कुकृत्यों ने भी मान कर गया।

बान तनिज-नी थी। नुजिलो की एक रखैत 'होना आवसवेल माये' ने उसे ज्ञा मारा कि 'उनके कृपि फार्म के वेष्टों की पत्तियाँ चरवाहे लोग अपने जानवरों को चरा देने हैं और वह शागक होने हुए भी उन्हें रोक नहीं पाता।' ध्यंग करारा। नुजिलो ने उसी क्षण कृष्ट प्रेमिका को आशवासन दिया कि 'वह चरवाहो के रे गाँव का ही अस्तित्व मिटा देगा।' दूसरे दिन वह सेना को साथ लेकर उस गाँव 'आनामि' पहुँचा और वहाँ के समस्त मीघो नागरिकों का कत्ले आम करा दिया। ग-नारी, बालक-बूढ, सभी घरों में पकडवर लाये जाने और रस्सों से बंधे उन लोगों को घोपरी कुन्हाडियों से लकड़ी चीरने की तरह काट डाला गया। गिरजाधर छिने हुए अबोड बालको तक को उसने नहीं छोडा। वहाँ के निवासी कुल २५०० लोगों का उनमें अपनी नूर महत्वाकांक्षा की पूति के लिए गफाया करवा दिया। क भी जीवित नहीं बचा। वह सारा दानाका मागों में पट गया और जमीन रक्त त्रिन हो गई।

इस प्रकार २५०० निरीह निरपराध मनुष्यों के नुशम वध की मिताल कम से म रग बनावरी में तो नहीं मिलनी।

कहने हैं, उनमें अपनी छोटी-नी त्रिन्दयी में अपने बानो में भी अधिक शक्या कुहाय विदे होनि। वे किनी अभाव या संकट के कारण नहीं, सिगु अपनी विहृत



“इच्छा यद्विहा लोये, जाये यद्धो विविस्तानि ।

सम्हा इच्छामनिच्छाए, जिगित्ता गुट्मेघति ॥”

ससार में इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं, जिनमें बंध कर जीव बहुत क्लेश—  
दुःख पाता है । इसलिए इच्छा को अनिच्छा में जीन कर ही मनुष्य सुख पाता है ।

अनिच्छा से इच्छाओं को कैसे जीना जाये ? यह सवाल आज का नहीं, सनातन  
है । हर युग का मनुष्य इस पर विचार करता रहा है । भगवान् महावीर ने उत्कृष्ट  
साधकों के लिए बनाया—

‘इच्छा सोम न सेविञ्जा’



“इच्छा बहुविधा लोभे, जाये बड़ो त्रिनिम्नति ।

तम्हा इच्छामणिच्छाए, जिगित्ता मुग्धेघति ॥”

ससार में इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं, जिनमें बंध कर जीव बहुत बनेश—  
दुख पाता है । इग्निए इच्छा को अनिच्छा में जीत कर ही मनुष्य मुक्त पाता है ।

अनिच्छा से इच्छाओं को कैसे जीता जाये ? यह रावान आज का नहीं, सनातन  
है । हर युग का मनुष्य इस पर विचार करता रहा है । भगवान महावीर ने उत्तृष्ट  
साधकों के लिए बनाया—

‘इच्छा लोभ न सेविग्जा’

“गायक को इच्छा और लोभ का भेदन नहीं करना चाहिए ।” गृह्य साधकों  
के लिए उन्होंने ‘इच्छापरिणामत्रय’ बताया, क्योंकि उसमें इनती सामर्थ्य नहीं होती  
कि वह सारे परिवार को साथ लेकर इच्छाओं पर सर्वथा विजय प्राप्त कर ले ।

इच्छाएँ जब भी आएँ, तब भी उसे मन को समझाना होगा, मन के विरुद्ध  
सम्पादक भी करना होगा, सभी वह इच्छाओं पर अनिच्छा द्वारा विजय प्राप्त कर  
लेगा ।

एक मुसलमान को सामारिक पदार्थों में विरक्ति हो गई । उसे सभी वस्तुएँ  
रमना प्रारक्य मान्य होने लगी । उसने सोचा कि वस्तुएँ पास में रहेगी तो फिर  
इच्छा जयेगी, उनसे उत्तृष्ट वस्तुओं को या उनमें अधिक वस्तुओं को पाने की, इसलिए  
इन वस्तुओं पर से ही ममत्व छोड़ दिया जाए तो अच्छा है । अतः उसने घर में से  
बर्तन, कपड़े, गहने आदि सब चीजें बाहर निकाल कर एक जगह डेर कर दीं । फिर  
उसने याचकों को बुलाकर उनको वे सब चीजें बाँट दीं । अपने पास उसने फूटी कौड़ी  
भी न रखी ।

फिर उसने अपने मन में कहा—“अरे मन ! अब तेरे पास कुछ भी नहीं  
रहा । अब तू बिलकुल निघन और अकिचन हो गया है । अब तू किसी भी वस्तु की  
इच्छा मन करना । अगर इच्छा करेगा भी तो वह पूर्ण नहीं होगी । क्योंकि अब न तो  
एक भी पैसा पास में है और न ही कोई साधन ।” मुस्लिम बिरक्त के मन ने स्वीकार  
कर लिया कि वह अब कोई भी वस्तु नहीं चाहेगा ।”

पर मन बाहिर मन ही टहरा, बड़ा चचम, उतावला और उदृष्ट । वह कहाँ  
नर स्थिर रह सकता था ! जब मुस्लिम को शाम तक भोजन नहीं मिला और वह  
शाम को नगर के बाहर विधाम के लिए बैठता तो मन ने इच्छा की—“कहीं से  
खाबल दाल मिलता तो पेट भर लेता ।” परन्तु पास में फूटी कौड़ी भी नहीं थी,  
इसलिए मन की इच्छा पूरी न हुई ।

कुछ ही देर बाद एक गाड़ी वाला आया तो उसने उसने पूछा—“एक बैल  
का एक दिन का किराया तुम्हें कितना देना पड़ता है ?” गाड़ी वाले ने कहा—“तावे  
का एक सिक्का देना पड़ता है ।” बिरक्त मुस्लिम बोला—“भाई ! इस बैल के बदले





है कि मालूम होता है घन पर उसके आधिपत्य के बजाय घन ही उन पर आधिपत्य जमाए बैठा है।”

सोम का काम ही है कि वह मनुष्य को इच्छाओं की पूर्ति के लिए बार-बार उत्तेजित करता है। वह मीनान की तरह जब मनुष्य के मन में घुस जाता है तो मन पर उसका कब्जा हो जाता है, फिर वह मन को मनन और उच्चस्वन इच्छाओं की पूर्ति के लिए आदेश देता रहता है। वह अमंनोप की भाग भड़काना रहता है, मानव-मन में।

सोम बिना प्रकार असमंनोप की भाग लगा कर मन को इच्छा की पूर्ति के लिए उकसाना है? इसके लिए मुझे एक रोचक उदाहरण याद आ रहा है—

एक पहाड़ पर अनार का बगीचा था। तलहटी से अनार के पेड़ दिखाई दे रहे थे। अनार के पत्तों से लुकी हुई टहनियाँ भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। अनारों को देख कर वहाँ घूम रहे एक भक्त के मुँह में पानी भर आया। उसके मन में अनार खाने की प्रबल इच्छा जागी। मन की उद्दाम कामना की पूर्ति के लिए अनार खाने के सोम ने मन को विवश कर दिया, जिनसे घर की ओर बढ़ते हुए कदम पहाड़ पर चढ़ने के लिए बाध्य हो गए। कामना-आकांक्षा को लिए वह पहाड़ पर पहुँचा वहाँ भी पत्थी अनारों को देख वह अपने लोभी मन को रोक न सका। बगीचे के सरक्षक के सामने उसने अपनी इच्छा व्यक्त की और उससे अनार खाने की इजाजत मागी। बगीचे के संरक्षक ने भना आदमी समझ कर उसे अपनी इच्छानुसार अनार खाने की स्वीकृति दे दी। अब क्या था! वह बगीचे में घुसा और एक पेड़ पर अच्छी सी पत्थी अनार देख कर तोड़ी और उसे थालू से बाट कर खाने लगा। पर वह अनार खट्टी थी। इसलिए खा नहीं सका। फिर उसने ४-५ बूँदों से अनार तोड़ी पर वे सब खट्टी थी, इसलिए खा न सका, उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई। वह परेशान होकर बगीचे में इधर-उधर घूमना रहा। उसे अपनी इच्छानुसार अनार मिल नहीं रही थी, इसलिए हैरान था। उसके चेहरे पर परेशानी स्पष्ट झलक रही थी। उसी बगीचे में एक सन्त एक पेड़ की छाया में ईश्वर भजन में मग्न बैठा था। उसके पाव पर मखिलियाँ भिनभिना रही थीं, उम और उसका ध्यान भी नहीं जाता था। वह तो भक्ति के संवीन में मग्न था। मग्न को देख कर इस आपत्तुक भक्त ने नमस्कार किया और पूछा—“ये मखिलियाँ आपको बाट रही हैं, आप इन्हें उठा कर कष्ट मुक्त क्यों नहीं होते?” सन्त ने इस भक्त को नीचे से खल कर पहाड़ पर बगीचे में कष्ट कर के आते, अनार खाने की सात्सावश संरक्षक से अनार खाने की मांग करते और अपनी इच्छानुसार अनार न मिलने से परेशान होकर इधर-उधर भटकते हुए भी देखा था। अतः सन्त ने गम्भीर स्वर में कहा—“मुझे कष्ट क्यों होगा? मेरा मन तो भक्ति की धारा में बह रहा है। ये मखिलियाँ तो पाव के मवाद को खा रही हैं घुसे तो नहीं खा रही हैं? हो सकता है, इससे शरीर को कुछ पीड़ा हो, पर मे मन और आत्मा को तो पीड़ा नहीं हो रही है। वह तो भक्ति रस में डूब चुके हैं।”



होती हैं। इन्हें जनन, मरण, त्राहण और मृत्यु की उन्मादी जानी है। पहली एण्डा का मुख्य प्रेरक बल मोम होता है, दूसरी का काम और तीसरी का अहंकार मिथिल शोध। ये तीनों एण्डाएँ जैनधर्म की भाषा में महेश्वरों कहलाती हैं। गीता में इन तीनों के प्रेरक बलों को नरक के द्वार कहा गया है—

त्रिविध नरकस्येवं द्वारं मासानमात्मनः ।

कामः शोधस्तथा लोभस्तन्मादेतन् प्रयं त्यजेत् ॥

ये तीन नरक के द्वार हैं, जो आत्मा के गुणों नष्ट करने वाले हैं। वे हैं— काम, शोध तथा लोभ। इसलिए आत्मार्थी को इन तीनों नरक द्वारों का त्याग करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मृच्छा, कामना और अहंता के रज में प्रविष्ट हुआ निरृष्ट इच्छाओं का अतिवाद मन धीरे-धीरे कनुयित कर देना है, उसे भय और शोक से आशान्त कर देना है, इसलिए नरक-रक्षण बन जाता है। वे ही फिर उच्छ्वस्य महेश्वरों मन्त्रमय वीमारियों की तरह अनेक बुराइयों को साकर मन और आत्मा के गुणों का नाश करके सर्वनाशी मिट्टी होनी हैं। वित्तपणा, पुत्रपणा और लोकेपणा की दुःप्रवृत्तियाँ विन्नतंत्र को बुरी तरह जर्जर कर देती हैं।

घन के सम्बन्ध में असन्तोष लोभ बनकर फूटता है, कामना का असन्तोष काम कहलाता है और स्वामित्व या अहंपूर्ति का असन्तोष मोह कहलाता है। अहंकार की पूर्ति में कहीं नुटि रह जाने का असन्तोष शोध के रूप में भी फूटता है। इन तीनों प्रकार के असन्तोष से मानसिक पाप एवं दुष्कर्म अपना पोषण पाते हैं। परिवारों का मधुर मन-मिनाप और स्नेह इसी के कारण नष्ट होता है। दाम्पत्य जीवन की प्रेम-प्रतीति में पत्नीना लगाने वाले ये ही तीन दुष्ट असन्तोष हैं। शान्ति और प्रेम के साथ मधुर जीवन यापन करते हुए आनन्द की सरिता बहाने और स्वल्प कल्याण करने में संलग्न होने की अपेक्षा घन-केन-प्रकारेण अन्याय, शोषण एवं अनीति से घन इकट्ठा करने की हविस में देश-विदेश मारे-मारे फिरने और प्रेत-पत्नी की तरह निरन्तर व्यस्त और ध्वंसित रहने में मह दुष्ट असन्तोष ही एकमात्र कारण हो सकता है।

इस त्रिविध असन्तोष को प्रगति का प्रेरकबल मानना सर्वथा भूल है। उसमें मृच्छा, कामना और अहंतापूर्ण रूप उच्छ्वस्य आसुरी इच्छाओं को उत्तेजना तो अवश्य मिलती है पर उनकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकती क्योंकि उद्विग्न और असन्तोषी व्यक्ति में शान्ति, आत्मनिरीक्षण, आवश्यक धर्म और निरन्तर अभ्यास की लगन नहीं होती। वह बाधता तो आज ही, अभी ही सब कुछ पाने की मृच्छा में सब पर हावी होने का उपक्रम करता है। उसे इनकी कुरमन कहीं, जो आत्मनिरीक्षण करे और उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए आने अन्दर उन महापुरुषों जैसे साधुओं की बड़ाई और जब वह मन्मोपी हो जाएगा, तब तो आत्म-परायण व्यक्ति का तरह इन आसुरी इच्छाओं—महत्वाकांक्षाओं को बिलकुल पगन्द नहीं करेगा। उन आध्यात्मिक उन्नति की और सद्गुणों की बड़ाई की महत्वाकांक्षा होगी, जिससे कि







अर्थ और वैभव की असीम सृष्टि में संयत व्यक्ति अनुचित उपायों में घन समाचर उन्हा उपयोग विनाशिता में, दुर्धननों में, विविध प्रदर्शनों में, विवाहार्थ के प्रमग पर विद्वान्तर्षों में, कुरुदियों के पोषण में बनते हैं। इस प्रकार धन के अर्जन और दुर्धन्य में बनमाधारण में ईर्ष्या और अगन्तोष पैदा होता है, गरीबों-अमीरों के बीच अगमानता बढती है, अपने बाव-बच्चों को उत्तराधिकार में विना धर्म के मुपत का मान देकर उन्हें निरुद्धे, आचारामदं, दुर्धननी एवं उदाऊ बनाये जाने हैं। वास्तव में इस प्रकार का धन गन्तान को देकर वे उन्हें परावलम्बी और अपाहिज तथा हीनवृत्ति का विचार बनते हैं। इसमें वे बानक परस्पर झगड़ते हैं, आलसी, अहंकारी और दुर्धननी बनते हैं। ये मत्र सुराहय वित्तपणा में मलान व्यक्ति पैदा करते हैं। यह नृष्टणा उनके लिए ही नहीं, सारे समाज के लिए घातक सिद्ध होती है। इसलिए वित्त को नहीं, वित्तपणा को निन्द्य बनाया गया है।

मगध सम्राट कोणिक के पास किम बात की कमी थी? उसके पास राज्य था, धन था, मुग्ध के सभी साधन थे, सभी प्रकार की सुविधाएँ थी। परन्तु वित्तपणा में प्रसन्न होकर अपने हल और विहल कुमार नामक भाइयों को अपने एक में मिले हुए स्यामुक्त हार और सिचानक हाथी को प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा उसके दिल में जगी।

बात यह हुई कि कोणिक चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाकर राज्य कर रहा था। एक बार उसके छोटे भाई हल और विहल सिचानक हाथी पर बैठकर तथा हार आदि आभूषण पहनकर सैर करने जा रहे थे, तभी कोणिक की रानी पद्मावती की दृष्टि उन पर पड़ी। उसके मन में ईर्ष्या की आग भभक उठी। उसने कोणिक को उत्तेजित किया कि यह हार और हाथी तो आपके पास सोभा देते हैं, इनके पास किम काम के? कोणिक ने पहले तो बहून समझाया कि ये तो उनके हक के हैं, परन्तु पद्मावती हठ ठानकर बैठ गई कि हार और हाथी किमी तरह से उनसे लेकर मुझे देगे, तभी प्रसन्न रहूँगी।" इस पर कोणिक ने हल-विहल से हार और हाथी मा देना स्वीकार किया।

दूगरे ही दिन कोणिक ने एक राजा के नाते अधिकारपूर्वक हल-विहल कुमार से हार और हाथी माँगे, तो उन्होंने अपनी स्थिति दुर्बल जानकर रातोरान ही अपना अन्तपुर, हार-हाथी आदि सब वस्तुएँ लेकर चम्पानगरी से कूच किया और विशालानगरी में अपने मातामह महाराजा केहा की शरण में पहुँच गये। उन्होंने शरणागत एवं दीहित के नाते उन्हें रस लिया।

इधर कोणिक को पता चला तो उसने कोपायमान होकर केहा महाराजा के पास यह मन्देश लेकर दून भेजा कि हार, हाथी एवं हल-विहल कुमार को वापस माँगे, अन्यथा आपका राज्य आदि भी छीन लिया जायेगा।" केहा महाराजा ने उन्हें वापस भेजने में इन्कार करके दून को लौटा दिया। इस पर कोणिक राजा अपार









तरीके हैं। यथा, सम्मान, परिवार का परोक्ष लाभ और धन का धनन जैसे लाभों को यदि केवल स्ट्रेज कौशल, बाधा-नशा, सहायकाजी एवं मेगासीरी के आधार पर सारे मोन में अरोदा जा सकता है तो उसे कौन छोड़ना चाहेगा ? बगना इबार जाने और हितान्न बित्तव में गोलमाज करने की संख्याओं में पूरी गुजाइन रहती है। अधिका-रिनों को उसका लाभ मिलता है। सेवा क्षेत्र को अनुचित करने में सबसे विधानक प्रवृत्ति कार्यकर्ताओं की पद-निष्ठा, अधिकार-निष्ठा और मस्ती बाह्यवाही मूटने की हेतु मनोवृत्ति ही प्रधान कारण है। सोईयणा प्रेरित सहायकधिन लोक सेवा साधियों को मिलाने, उभाड़ने में मेकर हत्या कराने तक के अनेकों अष्ट तरीके अरनाते हैं, अरनी तनिक की मनोनिष्ठा एवं स्वायंनिष्ठा के कारण सार्वजनिक संस्था की बदनाम कर देते हैं। सार्वजनिक जीवन में तो इम तरह मोईयणा प्रेरित आपाधापी, छीना सपटी, मूट ससोट चनती ही है। हजारों रजवाओं में ऐसे कारनामों प्राचीन काल में हुए हैं।

अनः ऐयणाओं के इम नारकीय जीवन से बचा जाए, इम दृष्टि से, सावधान करने हेतु नीतम महपि कहते हैं—

“सुखा महिच्छा नरयं उच्यते ।”





हम जीवों के एक बांधे की अमूर्त समझ बनाया है, बांधे की विधि। अमूर्त को मनुष्य की व्यवहारविधि से समझ हुआ है, जो कि विधि बहू संसार के बांधाकारण से रह कर से निकल है। इस तरह मनुष्य के मन अमूर्त और विधि दोनों ही हैं।

कोणी मन से बोध जित बरसाता है

हमने व्यक्ति का मनो जोब भी मनुष्य के समझ में आने का समझ में आने ही, ठर बहू यदि मन में बोध से आता, मन में उसके प्रति बोध और बोधपूर्वक विचार को, मन में बढोगे और धुन का भाव में आता, दूसरी विचारधर्मों का कोई विचार नही, माने ही स्वार्थ और मनबद की दृष्टि से विचार करता है तो मन में आता हुआ बहू चीज दूसरी के प्रति मन में उद्भूत बरसाता है।

एक दूसरा व्यक्ति है, उसके दृष्टि अनुभवमी है। वह सारे ससार के प्राणियों को अन्वेषण करने में लगता है। उसके मन में दूसरे प्राणियों के या दूसरे मनुष्यों के प्रति दया, कृपा, कौमलता और अहिंसा की भावना है, उनका विचार है, ये भी जीवों में भी जीवें, अपना दर्हें उताकर जीवें, इनको जीने की प्रादक्षिणता देकर मैं अपना जीवन जीऊँ, उनके द्वारा कभी अस्वभाव किये जाने पर भी वह बोध न करके जीवों के स्वभाव का विनियम कर क्षमा या सहिष्णुता धारण करता है। ऐसा व्यक्ति दूसरी के प्रति मन से अमूर्त बरसाता है।

स्वच्छक थायसनी नगरी के जितमानु राजा का इकलौता पुत्र था। एक जदही बहू थी, जिसका नाम था पुरदरयणा। कुम्भकार बटक नगर के राजा दण्डक के साथ उसकी शादी की गई। दण्डक राजा के यहाँ पालक नामक पुरोहित था, वह नामिकवादी था। एक बार किसी कारणवश दण्डक राजा ने जितमानु राजा के यहाँ पालक को भेजा। पालक ने जितमानु की राजसभा में धर्मवर्षा के शिलसिले में अपनी नामिक विचारधारा का प्रतिपादन किया, किन्तु वही उपस्थित स्वच्छक राजकुमार ने जैनसिद्धान्त की दृष्टि से उस विचारधारा का युक्तिपूर्वक खण्डन किया, जिससे पालक को निरस्त होना पड़ा। अपने अह की चोट लगने से पालक के अपने मन में स्वच्छक के कुमार के प्रति अत्यन्त क्रोध का विष फोल निभा। किन्तु वही उत्तरी एक न धनी। फलत अपना काम निगटाकर वह बागल अपने नगर की लौटा।

एक बार विचारण करने-करते बीचमें तीर्थंकर मुनिमुण्ड स्वामी का पदापंग थायसनीनगरी में हुआ। तीर्थंकर प्रभु की धर्म देना सुनकर स्वच्छक कुमार को सत्कार में विनक्ति हो गई। उन्होंने ५०० पुण्यो के साथ प्रभु से मुनिदीक्षा ली और उस विहार करने लगे। इसी दौरान उन्होंने जैन सिद्धान्तों का गहन-अध्ययन किया। तीर्थंकर धमकान् ने स्वच्छक मुनि की योग्य जानकर, ३००

धना दिये।

राजवाचार्य ने प्रभु के चरणों में साँ

धनु ।

की तो मैं अपनी सामाजिक









बचन में भी प्रोथविष उगमना है

इसी प्रकार बचन में भी प्रोथविष व्याप्त हो जाता है, तब मनुष्य अनायास भूत जाता है। प्रोथ मिश्रित बचन कितने घमंजनक, बटु, उग्र और अल्प होते हैं, उममें विनाश अनर्थ हो जाता है, स्व-पर की बिलती हानि और वैर-विरोध की परम्परा बढ़ती है, यह तो भारतीय इतिहास को उदात्तर देगने में आप स्वयं जान जाएँगे। प्लौम बचि का भी यही कहना है—

“अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिग की गंग ।  
जैसे मितरिह में मिल्नी, निरम याँत की फाग ॥”

जिनके मुणकमन में वाणी का अमृत रग झरने के बढेने प्रोथ का विष उगना जाता हो, यमरा लो, वहाँ बचन में प्रोथ का विष धोतकर नरक में जाने की तैयारी कर ली। पातत्रल महाभाष्य में टीका बहा है—

‘एक शब्दः सृष्ट प्रमुक्त’ स्वर्गें सोबे ‘ष कामधुक् भवति ।’ एक शब्द का यदि विवेकपूर्वक हित बुद्धि से प्रेम और शान्ति के साथ प्रयोग किया गया है तो वह स्वर्गें लोक की ओर ले जाता है, इस लोक में आपके लिए वह वाणी कामधुक्-धेनु-सी हो रही है, आपके जीवन में सोई हुई विराट् चेतना को जगा रही है। किन्तु हमने विपरीत यदि आप अपणन्द, बटु शब्द एवं घमंजनशी बचन बोलते हैं, दूसरो को लडने के लिए आप उदमाते हैं, या वाणी से कटा खुभोते हैं, आग लगा देने वाले बचन बोल रहे हैं, तो समझ लीजिए यह बचन आपको नरक की ओर ले जा रहा है। ऐसे शब्द आपके मुँह को भी गन्दा करते हैं दूसरो में भी उलझी भयकर प्रतिक्रिया डगाने हैं। प्रोथ युक्त बटोर घमंजनशी एवं बटुवाणी विष का काम करती है। वाणी मिनी धी आप को अमृतरस घरसाने के लिए, लेकिन आप वाणी में प्रोथ मिलाकर बरसाने लगे हवाहल विष। हम देखते हैं कि कई परिवारों में जग जरा बात पर प्रोथ में अति लाल हो जाती है, मोहे लन जाती है, और फिर बहनों से आपस में लडाई भी टन जाती है। इस विष को खाने पर तो मनुष्य केवल इसी जन्म में घोड़ी-घो डेर में खन्म हो जाता है। परन्तु प्रोथ रूपी विष को मन में—दिमाग में प्रविष्ट कराने पर, बचन द्वारा उम उगमने पर तथा काया की चेष्टाओं द्वारा उम विष को शायंक्ष्य में परिणत करने पर तो एक जन्म नहीं, अनेक जन्मों तक मनुष्य को उमी बनि और धोनि में भटबना पड़ता है।

युवक सोम नवपरिणीत था और अपनी पत्नी को लेने के लिए समुराज आया हुआ था। किन्तु उसको मुनि दर्शन का नियम था, इसलिए गाँव में विराशिन आचार्य चण्डरट के पास अपने माने के साथ बह आया। माने ने आचार्य के पास चण्डरट से सोम की ओर इलाहा कहने कहा—“शुद्धे !  
कई है। इन्हे मुँह लीजिए ।” सोम ने चाहा कि वह यह सब मेरा • रहे है किन्तु आस्तोबिध



आगे अँधेरा आदि सब क्रोधविष अन्य उपद्रव है। क्रोधकारी विष के कारण शरीर में अनेक व्याधियाँ लग जाती हैं और दिनानुदिन मनुष्य क्षीण होकर अल्पज्ञान में ज्ञान के गाल में चला जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक 'सोना' कहते हैं—क्रोधकारी विष मनुष्य को मद्यपान की तरह विचारशून्य, दुर्बल एवं मरने की तरह शक्तिहीन बना देता है। दुर्भाग्य की तरह यह जिमने पीछे पड़ता है, उसका सर्वनाश करते ही छोड़ता है। क्रोधजन्य महाव्याधि का शरीर और मन पर जो दूषित अमर होता है, वह जीवन को पूरी तरह अमान्य बना देता है। अशांति, मार्गका, आवेश आदि बिचार उसे घेरे रहते हैं। पाश्चात्य विचारक Otway (ऑटवे) कहता है—

"It is in my head, it is in my heart, it is everywhere, it rages like a madness and I most wonder how my reason holds."

यह नाथ मेरे मस्तिष्क में है, यह मेरे हृदय में है, यह सर्वत्र घुम गया है; यह पापन पन की तरह भड़क उठता है, और मैं बहुत आश्चर्य करता हूँ कि यह मेरी तरफ शक्ति को कैसे पकड़ लेता है !"

### क्रोध विष को न रोकने से भयंकर हानि

क्रोधकारी विष जब मन, बचन और क्राया में फैलने लगे कि तुरन्त उसे रोक देना चाहिए। जो इन विष को फैलने में रोकता नहीं है, उसे भयंकर कष्ट उठाना पड़ता है।

क्रोधविष को न रोकने से स्कन्दकाचार्य अग्निकुमार बन गये थे, यह मैं पहले बड़ा चुका हूँ। इंद्रपापन ऋषि ने यादवों पर भयंकर क्रोध करके निदान कर लिया था, कि मैं यादवों और द्वारिका का विनाश करने वाला बनूँ।" फलतः वे अग्निकुमार देव हुए। द्वारिकानगरी भस्म कर दी। श्रीकृष्ण आदि कुछेक यादवों को छोड़कर अन्य समस्त यादवों का सर्वनाश कर दिया। साराग यह है कि क्रोध के वश इंद्र इंद्रपापनऋषि ने अपनी तपस्या का फल खो दिया। त्रिपृष्ठ वामुदेव के भव में पद्मवान् महावीर ने शय्यापालक के कानों में अत्यन्त क्रोध विष से व्याप्त होकर समीपमें शीश का रस उड़ेलवा दिया था, जिमने परिणामस्वरूप उनके कानों में पद्मवान् महावीर के भव में बीलें ठुकी।

अनुकारी भट्टा को क्रोधविष से व्याप्त होने के कारण बरबर वेष में अनेक गश्क सहते पड़े। क्रोधवश कुरह-उकुरह मुनियों ने संघम जीवन से हाथ धोए। क्रोध के कारण तपस्वी मुनि चाण्डाल कहलाए।

दखे हुए क्रोध को पुनः जगाना तो और भी भयंकर

किन्हीं दो व्यक्तियों में किमी कारणवश झगड़ा हो गया। क्रोध के कारण दोनों उत्तेजित हो गए। किन्तु शान्त एवं परोपकारी हितैषी सज्जन ने बीचबिबाब करके उम सझाई को शांत करा दी। परन्तु किमी क्रोधप्रिय एवं बलहृप्रिय व्यक्ति



बन्धुओं ! आप भी अपना मरी जाय समझिए । अगर आप शोधकारी विषय को जाने ही शोधें नहीं, उन्हे 'शरीर'में पोढ़े की मरणा गतोन्हे रहेंगे तो पाद रणिये एक न एक दिन शोध का विषय भी आप के गारे जीवन में पैन जाण्णा भोग वह भाग्यो मे दूधेया । आपकी आत्मा को सम्प्राप्तमय पर आगे नहीं बढ़ने देगा । इगनिए शोध-रुकी विधेये कीटानु का पना मगने ही मुरंन उमे मदेइने की कोनित कीजिए ।

### शोध को देखने और नापने की प्रक्रिया

शोधकारी विषय जीवन मे है या नहीं ? है तो कितनी डिग्री है ? उसके बाद नियमन का सम्प्राप्त कैसे करना चाहिए ? इस सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत करना है । रोग के कीटानुओं को देखने की तरह शोध के विप्लव कीटानुओं को बागीची मे देखने के लिए मुख्य अन्वितरीक्षण—आलोचन आवश्यक है ।

इसने माय ही शोध कितनी डिग्री का है ? शोधनिर्पणन के प्रति रचि है या नहीं ? इसने नाप-जीन के लिए कुछ प्रश्न प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनके उत्तर करने आप ही 'हाँ' या 'ना' में आप दे लें :

- (१) आपको शोध आता है या नहीं ?
- (२) नीत्र धाना है या मन्द ?
- (३) शोध मकारण आता है या अकारण ?

(४) यदि मकारण आता है तो कौन-सा कारण है ? — (अ) आपके मन के अनुभूत या आज्ञानुसार अमुक व्यक्ति ने कार्य नहीं किया इस कारण ? (आ) पहले किसी ने आपके प्रति कोई उपकार किया था इस कारण ? (इ) वर्तमान में आपको कोई धन, जन या किसी पदार्थ को खानि पढ़ेंबाई, इस कारण ? या (ई) आपके अहं को शोध पढ़ेंबी, इस कारण ? (उ) आपका अपमान कर दिया, इस कारण ? या (ऊ) और कोई कारण बना ? अथवा (ख) दुर्वचन से, स्वार्थपूर्ति में बाधा से, अनुचित व्यवहार से, प्रान्ति से या विचारभेद, अथवा दृष्टिभेद से शोध आया ?

(५) जो भी कारण शोध का बना, उसके निवारण के लिए आपने कोई उपाय किया या नहीं ?

(६) शोध आपको प्रतिदिन आता है या कभी-कभी पाच दस दिन में ?

(७) एक दिन में एक बार आता है या अनेक बार ?

(८) शोध जाने पर तत्काल शान्त हो जाना है या गीठ बाध कर लवे समय तक टिकता है ?

(९) बाद में आपको शोध के लिए कभी परवाताप होता है ? या कभी शोध-निवन्धन न कर मचने के लिए कुछ प्रायश्चित्त लेने की इच्छा होती है ?

(१०) जब शोध आता है तब अपने भीतर ही सीमित रहता है, या गाली, मारपीट या हाथ पैर चलावे के रूप में बाहर धा जाता है ?



कीर मन्त्रणापूर्वक इगने भी सन्तुष्टियों में निर्येदन किया—“गुरुदेव ! आपने जिन चीजों का आश्रय किया, वह बहुरंग में जीवन में है। मैं अपनी चोरी-चोरी बदमाश का हूँ। मैं अपने इस शोध-शोध से आरम्भ देखने ही उठा हूँ, उठ गया हूँ। बुराई, इन्कार कोई अकमीर इवान बनाए, जिसमें मैं शोध-शोध से लुटकारा जा सकूँ। मैं अपना बचपन उधार मानूँगा।”

मन ने आश्चर्यजनक देते हुए कहा—“अग ! बदमाशों का प्रयत्न करने पर कोई भी बस्तु अमममय नहीं। यह तुम्हारे पूर्व संस्कारों का परिणाम है। छोटे-छोटे अन्वय से वे बुभुकार भी निर्मूल हो जायेंगे।” यों बहुरंग मन ने उसे एक मंत्र दिया और बताया—“जब शोध का प्रसंग उत्पन्न हो, जब मीन छाया करने लग मन को २१ बार सोचना तथा उस शोधजन्य आवाकण को छोड़कर बड़ी दूर चले जाना। यद्यपि कुछ दिनों तक तो पड़ी हुई आदत तुम्हें बहुत हैरान करेगी। परन्तु करने ही सफल पर डटे रहना। भविष्य में यकीन न हो, इगने लिए प्रभु से प्रार्थना करना। अपनी आत्मा को सधयपूर्वक जागृत करना। इसी प्रकार का ध्यान और कर करना, जिसमें क्षमा, मन्त्रणा, प्रेम, मैत्री, प्रमोद, बरणा, दया, श्रीकों के स्वभाव, आदि का गहराई से विन्दन करना। एक मंत्र पर भी सुबह-शाम एवाचनपूर्वक विन्दन-मन के साथ कर करना। जिसामु रमणलाल को मंत्र बना मिन गया, तीन लोक भी निधि मिल गई। उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। यद्यपि पूर्व संस्कारक कुछ दिनों तक तो वह यथा-यथा बुद्ध हो जाना; लेकिन वह कोरी स्नेह थी, मन में श्रद्धा का तत्त्व अधिक था, तन्त्राल में जेठा नहीं था, इसलिए कुछ ही दिनों में उसका शोध-रोग दान्न होना दिखाई दिया। रमणलाल की जागृति में छोटे-छोटे शोध विकार पलायमान होने लगे।

एक दिन रमणलाल के शोध विषय की बसोटी हुई। एक दिन घर में लिचड़ी बनी थी, उसमें मा व पत्नी दोनों ने नमक डाल दिया था। नमक दो बार पक जाने के कारण लिचड़ी खारी हो गई थी। वही लिचड़ी रमणलाल की धाली में परोसी गई थी। लिचड़ी का कौर मुह में डालते ही खारी लगी। पहले ऐता प्रसंग आना तो वह लिचड़ी को पानी मां या पत्नी के माथे पर दे मारता था, पर अब रमणलाल बदल गया था। पूर्व संस्कारों ने जोर तो धुब लगाया, पर आज बागडोर रमणलाल के हाथ में थी। वह ‘ओ३म् गुरुदेव’ मन में बोल कर जखरी कायं के बहाने सीधा दूकान पर पहुँचा। उसके बाद जब मां ने लिचड़ी खाई तो उन्हें भी खारी लगी। बहू से पूछने पर पता लगा कि उसने भी नमक डाल दिया था। अब मां की समझ में आया कि रमण भोजन की धाली पर से क्यों उठकर खला गया था। मां गुरुस्त दूकान पर पहुँची। पुत्र को आग्रहपूर्वक मनाने लगी—“वेटा, जल्दी घर चलो। हमें पता नहीं था, प्रभु से नमक दो बार दान दिया था। हमारी भून के लिए हमें क्षमा करो। तुम जो बहोने, वह मैं बना दूँगी।” मां के वास्तव्यमय वचन सुनकर रमणलाल के घर के द्वार खुले। आज उसे वास्तव्य का अनुभव हुआ। सोचने लगा—शोध ने मुझे बहुरा



1. The first part of the document is a list of names and titles, including "The Hon. Mr. Justice" and "The Hon. Mr. Justice".

जायेगा। क्रोधी के प्रति क्रोध करने में क्रोधी का बल बड़ जाना है। जैसे शत्रु हमारा बल हरण कर लेता है, वैसे, क्रोधरुपी शत्रु भी हमारा बल क्षीण कर देता है। माघ ऋषि ने कहा है—

‘क्रोधी हि शत्रुः प्रथमं नराणाम् ।’

‘क्रोध मनुष्यों का सबसे पहला शत्रु है।’

क्रोधी के प्रति क्रोध करके अपना बल मत घटाओ

कई लोग क्रोधी के क्रोध को देखकर सोचने लगते हैं कि मैं क्या इतने कम हूँ, या कमजोर हूँ ? इसकी गाली सहन कर लूँ यह मुझ से कैसे हो सकता है ? परन्तु ऐसा करने में क्रोधी का बल बढ़ना है, क्रोधी के प्रति क्रोध करने या गाली देने जाने का बल घटता है।

एक बार श्रीकृष्ण, बलदेव, सत्यक और दाहक चारों वन में घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गये। वहाँ उन्हें रात हो गयी। घर वापस लौटने का मौका नहीं था। उन्होंने निश्चय किया—आज रात को किसी पेड़ के नीचे बितायेंगे, पर हममें से एक व्यक्ति बारी-बारी से जागता रहे, ताकि कोई उपद्रव हो तो शान्त किया जा सके। सर्वप्रथम दाहक की बारी थी। इसलिए वह अपने पहरे पर बैठ गया, बाकी तीनों सो गये। कुछ ही देर बाद एक पिशाच आया, वह बोला—“मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है, इसलिए इन तीनों को खा लेने दे।” दाहक—“यह कैसे हो सकता है। मैं इनकी रक्षा के लिए सैनाप हूँ। मेरे रहते तुम इन्हें नहीं खा सकते। इस पर पिशाच दाहक से भिड़ गया। दोनों में रस्साकस्मी होने लगी। ज्यों-ज्यों दाहक का रोप बढ़ता जाता, त्यों-त्यों पिशाच का बल बढ़ता जाता। अतः दाहक पिशाच को परास्त न कर सका। इतने में तो उसका समय पूरा हो गया। अब बारी थी—सत्यक की। वह जब पहरे पर बैठा, तब फिर वह पिशाच आया और उसी तरह अपनी बात दोहरा कर सत्यक से लड़ने लगा। सत्यक ने भी ज्यों-ज्यों पिशाच के प्रति क्रोध प्रगट किया, त्यों-त्यों उसका बल कम हो गया, पिशाच का बल बढ़ गया। अब सत्यक के सो जाने के बाद बलदेव की बारी थी। बलदेव भी अत्यन्त रोप में आकर पिशाच से भिड़ गया, परन्तु दाहक की तरह वह भी थोड़ी देर में हारकर घूर हो गये। वह भी पिशाच को परास्त न कर सके, क्योंकि गुस्सा करने से पिशाच का बल बढ़ जाता। अब श्रीकृष्णजी का नम्बर था। वे पहले तो शान्त सबे हो गये। पिशाच का क्रोध धरा रोप ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, श्रीकृष्ण धाम्नि से उभे रहने लगे—शाबाश ! तू बड़ा वीर है। तेरी माना घन्य है, जिसने ऐसा वीरपुत्र पैदा किया।” इस शान्त रहने से पिशाच का बल घटना गया। आखिर वह इतना निर्वन हो गया हार कर चला गया। सबेरे तीनों व्यक्ति उठे तो उन्हें मान धारी देखकर ब पूछा तो तीनों बोले—रात में हम एक पिशाच से लड़े थे। इसी कारण मृत से

















उपर बनाये हुए दोरों और दुर्गुणों को मिटाने और बानावरण में मुक्त, शान्ति आनन्द और प्रेम को फैलाने में सफल हो सकना है और कोई उपाय इतना कारगर साबित नहीं हो सकता। इमपि अहिंसा इन धूल पर अमृत की सरिता है। अहिंसा की अमृत-सरिता में दुःखी मगधकार व्यक्ति अपने आपको तो अमर बनाना ही है, वह जिस किसी का सम्पर्क करता है, उसके जीवन में भी अमृत भर देता है।

जिस प्रकार सरिता की धारा स्वयं जीवन रहती है और जो उसके पाम बना है, उसमें सम्पर्क स्थापित करता है, उसके भी वह जीतना प्रदान करती है, इसी प्रकार अमृत की सरिता अहिंसा में अवसाहन करने वाला व्यक्ति अपनी आत्मा में जीतना, शान्ति और आनन्द का अनुभव करता ही है, साथ ही उसके सम्पर्क में जो भी जाता है, वह भी आनन्दित हो उठता है। धोर-हाथ अपने से वर न मानने वालों की भी सम्पर्क हण कर लेने हैं, किन्तु उनकी भी दुष्टवृत्ति अहिंसा के अमृत से शीघ्र हृदय वाले महान् आत्माओं के पाम पहुँचकर बदल जाती है। वे उनके प्रभाव से सज्जन बन जाते हैं।

सपागन बुद्ध के सम्पर्क में आकर अंगुलिमाल डाकू से भिक्षु बन गया, यह अहिंसा का प्रभाव ही तो था। बाल्मीकि डाकू महात्मा नारद के सम्पर्क से श्रुति बाल्मीकि बन गया, यह अमृत अहिंसा का ही तो था। मगवान महावीर के सम्पर्क में षण्डबौद्धिक विषय विषयमन करना छोड़कर अमृत का शोन बन गया, क्या यह अहिंसा का दिव्य प्रमाद नहीं था ?

दूर की बात जाने दीजिए—गाँधी युग की बात तो आपमें से बहुत से जानते ही होंगे। गुजरात के मूक लीबसेवक रविशंकर महाराज को कौन नहीं जानता ? उनके हृदय में आतङ्ककारी डाकुओं के प्रति अगाध प्रेमामृत भरा था। अनः भयकर आतङ्ककारी डाकुओं से मिलने का निश्चय किया। डाकुओं के मिलने की जहाँ संभावना थी वहाँ वे अंधेरीरात में चले गये। चारों ओर छाया हुआ घना गन्धकार बानावरण को भयानक बना रहा था। दोनों ओर खड़ी टेरियों के बीच बहता छोटा-सा सरिता। किसी महाकाय व्यक्ति की भयकर आवाज सुनकर अजनबी धात्री रुक गया। चारों ओर से बन्दूकधारी डाकुओं ने उसे घेर दिया। जब उन्होंने बन्दूकतानी तो अजनबी यानी रविशंकरजी का मुक्त हास्य फूट पड़ा। बोले—“मैं भी तो तुम्हारी बिरादरी का डाकू हूँ। दम्पुओं ने बन्दूक नीची कर ली और पूछा—“यहाँ क्यों आये हो ?” “आप

















प्रेम आदि का अमृत बरना होगा, बड़ी शोच, अस्मिन्, मोष, मोह, काट, मगर भविष्य कीटाणु नहीं होंगे। दया और वाग्मन्य का, मंत्री और आत्मीयता का उग हृदय में स्थायी निवास हो जाएगा। परन्तु त्रिम हृदय में काम, क्रोध आदि की गन्दगी होगी, बड़ी अमृत नहीं रहेगा, वह हृदय विगाह हो जाएगा। उग हृदय में प्रेम भी होगा तो वह स्थायी और वागमता की दुर्गन्ध होगी। छलकण्ट एक मायाचार की बन्तू वहाँ फैली हुई होगी। बाहर से उग व्यक्ति का व्यवहार मधुर, प्यार-भरा प्रीति होगा, परन्तु अन्दर में बट्ट और काट पूर्ण होगा। परन्तु हृदय में दया, प्रेम, स्नेह, करुणा आदि अमृत भावनाएँ निम्नानिम होगी तो वे सब अमृत बनेंगी और अमृत का काम करेंगी। त्रिमके भी सम्पर्क में वह व्यक्ति आया, उसको अपनी दया आदि के अमृत से प्रभावित कर देगा। उसके हृदय में स्थित दयामृत का पोषा बढ़ना-बढ़ता एक दिन विशाल वृक्ष के रूप में पल्पविन-पुणित हो जाएगा। इनीनिए कहा है—“दुनिया के त्रिमने भी धर्म हैं, त्रिन्हें मानव अपनाता है, वे सभी दयामृत की गतिता के महाकण्ट पर पल्पविन, पुणित एक अकुरित होकर बडने हैं। अगर दयामृती अमृत सरिता मूत्र जाए तो वे सभी धर्म, मूल कर झड़ जायेंगे। वे कब तक हरे परे रह सकते हैं ?

एक पाश्चात्य विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

“A mind full of piety and knowledge is always rich; it is a bank, that never fails; it yields a perpetual dividend of happiness.”

“दया और ज्ञान से भरा हुआ हृदय हमेशा धन से परिपूर्ण होता है। ऐसा हृदय एक बैंक है, जो कभी फेल नहीं होता। यह खुशी का एक स्थायी साधन देना रहता है।”

कमलपुर के हरिवाहन राजा का पुत्र भीमकुमार जैसा घरीर से मुकुमान का, वैसा वह हृदय में भी कोमल था। बुद्धिमानर मन्त्री के पुत्र मति-सागर के साथ उसरी माझी दोस्ती थी। एक दिन शुभ समाचार प्राप्त हुए कि नगर के बाहर उद्यान में देवचन्द्राचार्य पधारें हैं। राजा हर्षित हो कर समस्त राजपरिवार, राजकुमार, मन्त्री एवं प्रतिष्ठित नागरिकों सहित आचार्यश्री के यन्दनार्थ गए। सभी यथायोग्य स्थान पर बैठ गए, तब आचार्यश्री ने उपस्थित जनसमूह को धर्मोपदेश दिया। त्रिसे सुनकर राजा ने मध्यवत्त्व सहित श्रावक के बारह वन अंगीकार किए। राजकुमार को भी गुरु देव के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। आचार्य श्री ने भीम को योग्य समझ कर कहा—“राजकुमार ! तुम्हें आज से मन-वचन-काया से दया की सम्यक् रूप से आराधना करनी है। क्योंकि दया दूररे सत्य आदि सभी धर्मों की माता है। अहिंसा-वन का विशेषात्मक रूप दया है, अहिंसावन सभी वनों की गुरदा के लिए बाइरूप

१. ‘दयानदी-महातीरे सबें धर्मास्तृणाङ्कुराः।

तस्या शोषभुपेतायां, त्रियप्रवृत्ति से चिरम् ?’



विमर्श की दाहिनी घुंटा पर भीम पड़कर आया था। भीम एक ओर छिप कर बैठ गया। बापानिक ने बाँए हाथ में एक पुराने को पकड़ रखा था, दाँए हाथ में उसके तलवार थी। वह उस पुराने में बह रहा था—“आने इष्ट देव का स्मरण कर ले, अब मैं तेरा मन्त्रक बाट कर देवी की पूजा करूँगा।” उस पुराने ने कहा—“मेरे तो परम उपकारी बीमराग देव का सर्वप्रथम शरण हो, तदनन्तर परोपकारी दयावान धर्मिष्ठ मित्र भीमकुमार का शरण हो।” यो कहते ही भीमकुमार ने एकदम प्रगट होकर सुष्ट बापानिक को मयकारा—“अरे पापिष्ठ ! टहल जा तुझे मजा चलाना है। तू मेरे मित्र की हत्या करना चाहता है। मेरे रहने तू उमका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं वहीं भीमकुमार हूँ।” बापानिक सहसा मन्त्रिपुत्र को छोड़ कर भीम की ओर दौड़ा। भीम ने अपने दोनों पैर पकड़ कर नीचे पटक दिया और उमकी छाती पर पैर रख कर पीटने लगा। “यह देव देवी (कानिका) ध्याबुल होकर कहने लगी—“भीम ! इसे मर मार। यह मेरा सेवक है। 108 मनुष्यों के मन्त्रक बमल पडा कर यह मेरी पूजा करेगा। तब मैं प्रसन्न होकर इसे घरदान दूँगी। अभी तो तेरा पराक्रम देव कर तुझ पर सुष्ट हूँ। वर मांग।” भीम बोला—“माना ! अगर तू मुझ पर सुष्ट है तो आज मे मन्त्र-वचन-बाया से जीवहिमा का त्याग कर। सभी धर्मों का मूल दया है। दया से सर्व मनोवाञ्छित फल मिलते हैं। हिमा में अनन्तकाल तक ससार में परिभ्रमण करना पड़ता है। अतः हिमा का त्याग करो, दयामृत का सेवन करो।” यह सुन कर देवी ने कहा—“अच्छा, आज मे मैं समस्त जीवों को अपने समान मान कर दया करूँगी। किसी को न मारूँगी। यों वह कर देवी अदृश्य हो गई।

मन्त्रिपुत्र ने अपनी आग बीनी कह सुनाई और कुमार का अत्यन्त उपकार माना। बापानिक ने भी कहा—“कानिका देवी को आपने दया धर्म अगीकार कराया, इससे मैं प्रसन्न हूँ और आपको मैं अपना धर्म गुह मानता हूँ। मैं आपका सेवक हूँ। आप तो अनेक गुणों से समृद्ध हैं।”

प्रातः काल एक देवाधिष्ठित हाथी दोनों को अपने पर बिठाकर एक उजड़े हुए नगर में ले गया। कुमार नगर के मुख्य द्वार पर मन्त्रिपुत्र को बिठाकर स्वयं नगर की गतिविधि देखने लगा। इतने में एक सिंह को अपने मुँह में एक पुत्र्य को पकड़कर ले जाते देखा तो कुमार ने उसे छोड़ देने को कहा। यह भी कहा कि अगर आप कोई देव है तो कबलाहार आप के लिए उचित नहीं, तथापि मांस खाने की इच्छा हो तो मेरा शरीर का मांस मैं दे देता हूँ, उसे खाओ।” सिंह बोला—“आपका कहना ठीक है, पर इस मनुष्य ने पिछले जन्म में मुझे बहुत दुःख दिया है, अतः उसका बदला मैं इस पानी में छोड़ी-सो भयो तक लूँ, तो भी मेरा श्रेष्ठ शान्त नहीं होगा।” कुमार ने कहा—“अरे भद्र ! यह तो बेचारा दीन है, दीन पर इतना क्रोध ! फिर क्रोध बरके बदला लेने से अनेक जन्म विगड़ते हैं। अतः क्रोध करना छोड़ दे।” परन्तु सिंह नहीं माना। उमटा कुमार पर झपटने लगा, तब कुमार भी अपनी तलवार उसके मस्तक पर



गुण्डेव ने भीमासा बनने की प्रार्थना की। गुण्डेव ने भी नाम जानकर जहाँ भीमासा गया। चातुर्मास में राजा ने अपने समस्त राज्य में अमासिगटह बरकाकर शीघ्र शिवा न करने की घोषणा कराई। प्रतिदिन गुण्डेव के व्याख्यान सुनने में भीमराजा को मगार से चिरफि हों गई। चातुर्मास पूर्ण होने के बाद भीमराजा ने गुण्डेव से भागवती दीक्षा ले ली। अब वे गुण्डेव के साथ ब्रिह्मण करने लगे। त्रिगुणिया पाणि-गानन करने हुए एक दिन उन्हें वैवाणान प्राण हुआ। अनेक जीवों को प्रतिबोध देने हुए भीमनुनि अमृत मुक्ति पट्टेके।

यह है दयामृत का अमृतकार ! दयामृत अहिंसामृत का ही अस्त-एव है। इसके प्रभाव में भीमनुमार अनेक संकटों में पार हो गए। दयामासा के प्रभाव से उन्हें अनेक बीमों का आजीर्ण और सहयोग मिला। यद्यपि उनकी दयामुक्ति की अनेक बार कर्माटी तो हुई, परन्तु वे अन्त तक अपने अहिंसाधन पर बटे रहे।

### अमृतयोग की साधना

अहिंसा अमृत है, इसका अनुभव तो आसानी ही हो जाता है, परन्तु इन अमृतयोग की अगर उच्च साधना की जाए तो उसके प्रभाव में मनुष्य ही नहीं, समु-पत्नी आदि प्राणी ही नहीं, प्रकृति जगत् के बण-बण में परिवर्तन हो जाता है। ऐसा अहिंसा-मृत का साधक जहाँ बही भी रहता है, वहाँ उसके साप्रिय में रहने वाले प्राणी तो अपना पारस्परिक वैर-विरोध भूल ही जाते हैं, किन्तु आगपाम की पुष्पी बनराजि कुम्भित, हरी-भरी और समृद्ध हो जाती है, वहाँ का जल, वायु और वातावरण सुगन्धित हो जाता है, उसकी साधना में मारी प्रकृति सहायक हो जाती है। इसीलिए शैव्य ऋषि ने कहा है—

“अमर्य कि अहिंसा।”

अमृत क्या है, अहिंसा।



सहंकार या अभिमान इगीञ्कार का एक मनु है, जिसमे हमें भावधान रहना है। हम चाहे बिजने ही उच्च मायक हो गए हों, चाहे ११वें मनुष्यमान तक पहुँच गए हों, फिर भी गणना में नहीं रहना है।

अभिमानरूपी मनु जब आता है तो माय में ज्ञोष, माया, लोभ, मोह, दम्भ, ईर्ष्या, स्वार्थ, द्वेष, ईर्ष्या, मगार, मर, हिंसा, अविनय, अमन्य आदि दम्भल के साथ आता है। जहाँ अभिमान आता है, वहाँ अह के चोट मगने पर जोष तो आ ही जाता है। जहाँ दुगरे के शनि जोष आया, वहाँ द्वेष भी आ पहुँचना है। अपने अभिमान की पूज मिटाने के लिए मनुष्य लोभ को आमन्त्रण दे ही देता है। साथ ही अपनी दुष्टिमा, अरुनी बचना या मेरे-तेरे के भाव को छिपाने के लिए माया भी आ प्रयत्न करती है। इर्ष्यानिष्ठ (आचारोग) साम्प्रकार कहते हैं—

'जे भावसंती से मायार्बंती'

जो मानदर्शी होता है, वह मायार्बंती भी होता है।

अर्थात्—जहाँ अभिमान महाराज का पदार्पण होता है, वहाँ मायारानी लो आ ही जाती है।

इसी प्रकार जहाँ अभिमान आता है, वहाँ ज्ञान और विवेक के नेत्र बन्द हो जाते हैं, इसलिए मोह महाराज तो उसकी सेना के नायक बन कर आ ही जाते हैं। आचारार्थ मनु (५/४) में स्पष्ट कहा है—

उपपमाने य नरे महामोहे पमुग्धाई

अभिमान करता हुआ मनुष्य महामोह से प्रमुग्ध (विवेकमूढ़) हो जाता है।

पारथाय विचारक Dillon (डिल्लन) ने भी यही बात कही है—

'Pride, the most dangerous of all faults, proceeds from want of sense, or want of thought.'

अभिमान, जो कि तमाम अपराधों में खतरनाक अपराध है, ज्ञान की कमी या विचार की कमी से आगे बढ़ता है।

इसी प्रकार जहाँ अहंकार आ जाता है, वहाँ मनुष्य अपनी बात चाहे झूठी या अहितकर भी हो उसे रखने के लिए दम्भ और द्वेष भी करता है। जहाँ अभिमान आता है, वहाँ मनुष्य 'स्व', मैं और मेरे के बन्द हो जाता है, अपना माना हुआ धर्म-धर्मदाय, जाति, कुल, बल, तप, धन, परिवार, स्वार्थ, विचार, मत आदि का आग्रह, कमी-कमी अभिमान के कारण कदाग्रह का रूप ले लेते हैं। परम्पराओं और मान्यताओं का पूर्वाग्रह भी अभिमान के कारण होता है।

"Pride is a vice, which pride itself inclines every man to find in others, and to overlook in himself."





इसी प्रकार अहंकार को शत्रुकीय प्रदान करना भी बुरा क्या है। अहंकार इतना दुष्ट व महान् दोष है कि वह सीधा आत्मा के साथ लिपटा हुआ है। जैसे कि एक विचारक Tupper (टप्पर) ने कहा है—

"Deep is the sea and deep is the hell, but pride mureth deeper  
It is coiled, as a poisonous worm about the foundation of the  
soul

मनुष्य महान् होना है और नरक भी महान्, किन्तु अहंकार शान की तरह बहुत ही अधिक महान् होता है। यह आत्मा की आभासगिताओ के चारों ओर जहरीले काँच की तरह कुण्डली घारे बैठा रहता है। शत्रुराज अभिमान की इतनी बड़ी सेना है, हमने तो आप सब परिवर्तित हो गए होते। इतनी बड़ी सेना के साथ जो अभिमान शत्रु आपके जीवन पर आक्रमण करता है, क्या उसने मायधान रहना, उसने बचकर रहना आपका कर्तव्य नहीं है ?

अभिमान इसलिए शत्रु है कि यह हमारी आत्मा का सबसे ज्यादा अहित करता है। मुष्मायितरम्भ भाण्डागार में अभिमान को सर्वाधिक दोष क्यों बताया हुए रहा है—

हीनाधिक्यं विदधात्यविवेकभावं  
धर्मं विनाशयति, संचिनुते च पापम् ।  
दौर्भाग्यमानयति, कार्यमपाकरोति  
किं किं न दोषमपवा कुर्वतेऽभिमान ।  
मूर्ध्नि निरस्यति, विनीतमपाकरोति  
कोति शशाङ्कधवला मतिनीकरोति ।  
मान्यान् न मानयति मानवशेन हीनः  
प्राणीति मानमपहन्ति महानुभावः ॥

अर्थात्—जो अपने से गुण आदि किसी बात में हीन या अधिक हो, उनके धर्म अभिमान अविवेक करता है, वह धर्म का नाश और पाप का सचय करता है, दौर्भाग्य लाता है, कार्य बिगाड़ देता है, कहीं तक कहे, अभिमान कौन-कौन-सा दोष नहीं करता है ? यह नीति स्वयं को दूर धकेल देता है, जिनकी पुण्य की भी निकास देता है, मनुष्य की चन्द्रमा-सी उज्ज्वल कीर्ति को मलिन कर देता है, सामान्य व्यक्तियों को अभिमान वश सम्मान नहीं देता, और अपने से वह हीन प्राणी है, ऐसा समझकर अभिमानी महानुभाव उसका अपमान कर देता है ।

हमके मित्राय अहंकार शत्रु पर विजय इसलिए विजय पाता आवश्यक है कि वह आत्मा को नरक या तिर्यक गति में धकेल देता है, यह आत्म-गुणों का सर्वत्र विनाशक है। जैसे कि विष्णु धर्मोत्तर में कहा गया है—







है। वे लोगो का हिन-अहिन नहीं मोचने। अष्टानार बाताबाशारी और मुतागा-सोरी का मार्ग आरनाते हैं। फलतः धीघ्र घनघन बनने जाने हैं परन्तु हम प्रकार अनीति से उपाजित घन प्रायः शुभार या विनागिता में सर्व ही जाना है।

एक व्यागारी को विनी प्रकार से बहुत बड़ा नाम हुआ। मनमाना एगना आ गया। फिर क्या था, वह व्यक्ति कामनामना के अनियन्त्रण का शिकार हो गया। आकारागर्दी की हासन में पकड़ा गया। जब उमका उद्वेग शान्त हुआ, तब उमने सज्जन होकर कहा—“अप्यधिर मग्नाति ते मुग्गे उद्विग्न कर गिया था। मैं इनराने सगा। दूसरो पर अपनी मकतना और शोब ब्रमाने के लिए मैंने वे अनुचित अवांछ-नीय कार्य किये। अब पछता रहा हूँ।”

निष्कर्ष यह है कि अहंकार से प्रेरित लोक शीघ्रगति से अन्याय-अनीति द्वारा उपाजित घन—एक प्रकार का पाप है। इसकी गति तीव्र होने से पाप की पराकाष्ठा जाने भी बिनम्बर नहीं लगना। पापों की पराकाष्ठा तब पहुँचने की अवधि में मने ही कोई अहंकारी अपने को चतुर समझता रहे, किन्तु पाप की पराकाष्ठा पर पहुँचने ही मारा समाज उमका मन्वा स्वरूप जान जाता है और हृदय में उमका मास छोड़ देता है। पापजन्य पनन में उठ जाना भी उमके लिए दुष्कर हो जाता है।

### आत्म-विकास में बाधक

अहंकार शत्रु आत्म-विकास में बहुत ही बाधक है। अहंभाव मनुष्य को हृद दजों का सकीर्ण और स्वार्थी बना देता है। अज्ञानी आत्मा को केवल अपने शरीर तक ही सीमित मानना है, जो कि अहंकार शत्रु के हृदय में प्रवेश होने पर होता है। इससे समस्त प्राणियों को आत्मबल मानने की प्रवृत्ति रक जाती है। क्योंकि अहंकारी तो अन्य प्राणियों को अपने से भिन्न मानता है।

समाज का अस्तित्व पारिवारिक सहयोग, प्रेम, मैत्रीभाव आदि पर टिका हुआ है। यदि इन भावों का सर्वथा अभाव हो जाये, तो मनुष्य अकेला अलग-अलग रह जाये। अहंकारशत्रु जब मनुष्य के हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, तब वह दूसरो का सहयोगी नहीं बनता, वह सब कुछ अपने लिए ही करना चाहेगा। वह सब कुछ अपने और अपनी के लिए सग्रह करेगा। केवल अपनी ही सुख-सुविधा पर ध्यान देगा। ऐसी स्थिति में मैत्री, सहयोग या प्रेम भाव अहंकारी के जीवन में न आने से वह अपना आत्मविस्तार भी न कर सकेगा। आज समाज में दूसरे के जीवनयापन, उन्नति और प्रगति में सहायक या सहयोगी न होने में ही दुःख, बेचैन और मधयं दिव्याई देते हैं।

### समाज सहयोग में बाधक

मनुष्य के यह मोचने का हेतु भी अहंकार ही है कि मैंने अपना विकास स्वयं किया है, समाज में कोई सहयोग नहीं लिया। क्योंकि समाज के सहयोग



एक गन्यासी तो विगो भक्त ने कहा—“मैं ३२ वर्षों में बन्दगी कर रहा हूँ, परन्तु मुझे ज्ञान नहीं होता।” गन्यासी बोले—“यों तो ३०० वर्षों में भी नहीं होगा।” भक्त ने पूछा—“क्यों फिर क्या उपाय करें?” गन्यासी ने कहा—“श्रृंगार छोड़कर, मिर मुँहावर परिचित लोगों में रोटी माँग कर ला।” भक्त—“यह कैसे सम्भव हो सकता है?”

गन्यासी बोले—“भाई, मैं बानों की एक बान है—अभिमान छोड़ें बिना नाम उपाय कर लो, तुम्हें सच्चा ज्ञान नहीं मिलेगा।”

इसलिए अभिमान मनुष्य को सद्गान प्राप्ति होने में बाधक है।

### विनय का नाशक

अभिमान विनय का तो बट्टर दुश्मन है। जहाँ अभिमान होगा, वहाँ विनय टिक नहीं सकेगा। अभिमान के समाप्त होने पर ही मनुष्य के मन में विनय का प्रारम्भ होगा।

मुसारा शहर में एक ऐसा उद्बुध और अविनयी व्यक्ति था, जो हर किसी की निन्दा एवं बुराई किया करता था। यहाँ तक कि वहाँ के गहृदय एवं लोकप्रिय प्रजावत्सल राजकुमार की भी निन्दा करने से नहीं चूकता था। उनकी दृष्टि दोष-दोषों की थी, जिसमें अच्छाई में भी उसे बुराई नजर आती। राजकुमार को उसकी करतूतों का सेवक द्वारा सब कुछ पता लग जाता था। एक दिन राजकुमार ने उसके अहंकार को उतारने के लिए एक तरकीब सोची। अपने सेवक के साथ उपहारस्वरूप कुछ चीजें भेजी। सेवक उसके यहाँ पहुँचा और बोला—“भाई! तुम राजकुमार की बहुत याद करते हो, उन्होंने प्रसन्न होकर एक बोरी आटा, एक बैली साबुन और घोड़ी-सी शक्कर उपहारस्वरूप भेजी है।”

उसकी प्रसन्नता का क्या टिकाना! गर्व से फूला न समाया। उसने मन ही मन सोचा कि ‘ये वस्तुएँ राजकुमार ने उसे प्रसन्न करने के लिए भेजी हैं, ताकि वह उसकी बुराई न करे।’ वह दोड़ा-दोड़ा पादरी के पास गया। बोला—“देखा, अब राजकुमार भी मेरी सद्भावनाएँ प्राप्त करने के इच्छुक हैं, तभी तो उन्होंने ये सब चीजें मेरे लिए भेजी हैं।”

पादरी ने कहा—“तुम मूर्ख हो। अहंकार के कारण तुम्हारी बुद्धि पर पदाँ पड़ा है। उसे हटाने के लिए, चतुर राजकुमार ने तुम्हें इनारे से सारी बानें समझाने का प्रयत्न किया है। जरा विवेक बुद्धि से काम लो। आटा तुम्हारा खासी पेट भरने के लिए है, साबुन तुम्हारे दुग्ध युक्त गन्दे शरीर को स्वच्छ करने के लिए है और शक्कर तुम्हारी बड़की जबान को मीठी बनाने के लिए है।”

बहना न होगा, उस अभिमानी के अभिमान का मारा नामा सधमुच, अहंकार से अविनय पैदा होगा है, जो अर्द्धमुक्त होते ही दूर हो





जो अपने आपका ही अधिक मानता है; दूसरा कोई भी मुझ मे बढकर नहीं है, इस प्रकार के अभिमान मे यद् अनेक जन्मो तक नीचकुल मे पैदा होना है ।

### कुलमद के रूप में

मुझ का अभिमान भी मनुष्य के लिए शत्रु का काम करता है । केवल उच्च कहलाने वाले कुल मे पैदा होने मे ही जीवन उत्तम नहीं होता, जीवन की उन्नति तो अपने शुद्ध पुरुषार्थ पर निर्भर है । कई लोग उच्चकुल मे पैदा होकर भी चोरी, बहिचार, डकैती, मायाहार, गुरा-पान, हत्या आदि करते है, क्या कुल उन्हें तार देगा या कर्मों के बन्धन से छुड़ा देगा ? अतः कुल का अभिमान करना व्यर्थ है । कुलाभिमान नीचकुल मे ले जाता है ? भगवान्-ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि भगवान् ऋषभदेव के पाग मुनि धर्म मे दीक्षित हुआ । स्वधियो मे अगशास्त्रो का अध्ययन किया । परन्तु धीर्यकाम के तार मे अत्यन्त पीडित होकर मन में विचार करने लगा—इस कठोर साधुचर्या का पालन होना मुझ से कठिन है, परन्तु धीरा छोड़ कर धर जाता भी अच्छा नहीं, अतः एक नया त्रिदण्डो परिष्कारक पथ निकाला । उतने यह बल्पना की—“साधु तो मन ध्यान वाया रूप त्रिदण्ड मे विरत हैं, मैं पूर्णतया नहीं, अतः त्रिदण्ड के प्रतीक चिह्न रखूंगा । साधु तो द्रव्य-भाव दोनों से मुण्डित है, बेशकच करते हैं, मैं ऐसा नहीं कर सकना, अतः मैं क्षुरमुण्डन कराऊंगा, शिक्षा रखूंगा । साधु तो मूढम हिमा मे भी सर्वथा विरत हैं, मैं पूर्णतया विरत नहीं हूँ, इसलिए स्पृश हिमा न विरत रहूंगा । साधु तो शान्त होने से शीतल रहते हैं, इसलिए वे चन्दनादि का लेप नहीं करते परन्तु मैं इनका शान्त नहीं, इसलिए चन्दनादि का लेप करूंगा । साधु शरीर मोह रहित होने हे इसलिए उन्हें छत्र तथा उपानह की जरूरत नहीं, परन्तु मैं अभी मोह का सर्वथा त्याग नहीं कर सका, इसलिए मैं छत्र तथा उपानह रखूंगा । साधु सर्वथा कपाय रहित हैं, मैं वैसा नहीं हूँ, अतः कापायवस्त्र रखूंगा । साधु तो स्नान से विरत है, परन्तु मैं परिमित जल से स्नान, पान करूंगा ।” यो अपने मन मे कल्पित परिष्काररूप अपना लिया । पर विचरण भगवान्-ऋषभदेव के माय-माय ही करते थे । उनका नया वेप देव कर लोग धर्म के विषय मे पूछने, तब वह भगवान्-ऋषभदेव के धमण धर्म का ही उपदेश देना, और अनेक राजपुत्रो को प्रतिबोध देकर भगवान्-ऋषभदेव के शिष्य बनाता ।

एक दिन भगवान् ऋषभदेव अयोध्या पधारे । मरीचि भी साथ ही था । भरतचक्रो भगवान् को बन्दन करने आए, सहसा उन्होंने भगवान् से विनम्रपूर्वक पूछा—“भगवन् ! आपकी धर्म परिपद् मे ऐसा कोई जीव है, जो इस भरत क्षेत्र मे इस चौबीसी मे तीर्थंकर होगा ?” प्रभु ने परमाया—“तुम्हारा पुत्र मरीचि है, जो इस चौबीसी मे अन्तिम चौबीसवां तीर्थंकर होगा तथा वह महाविदेह क्षेत्र मे मूजानगरी मे प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती भी होगा एव इगी भरत क्षेत्र मे त्रिपृष्ठ नामक प्रथम वामुदेव भी होगा ।” यह सुन कर भरत चक्रवर्ती हर्ष-मग्न होकर मरीचि के पाय



परन्तु बाद रगित, बिगती भी वन का अभिमान और उमगा दुःखयोग उमके एव गमात्र तथा राष्ट्र के लिए बहून ही अनपं बन है।

### रूपमद के रूप में

रूप एव सौन्दर्य भी जागवान है, धार्मिक है। वृद्धावस्था और वृद्धि, इन दोनों के कारण किसी का रूप वा अभिमान टिक नहीं सकता। संसार में एक से एक बदतर रूपवान है। कोई यह गारण्टी नहीं दे सकता कि मेरा रूप बिरसथायी रहेगा। मथुरा नगरी की ननंकी वामवदत्ता को अपने रूप पर बड़ा गर्व था। उसके रूप से आश्चर्य होकर हजारों युवक उमके इगारे पर नाचने को तैयार रहने थे। लेकिन शीघ्र ही उमके शरीर में एक ऐसा रोग हो गया, जिनमे सारा शरीर सह गया। राजा ने उमे नगर के बाहर फिक्वा दिया। अब उम ननंकी के पाम कोई फटकता न था। जिन रूप पर उमे गर्व था, वह गनकर चूर-चुर हो गया। सारा रूप बीमारी के कारण नष्ट हो गया। वामवदत्ता को बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

हस्तिनापुर के सनत्कुमार चक्रवर्ती को अपने सौन्दर्य का बड़ा अभिमान था। देवलांश में उमके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर शी देवता ब्राह्मण के वेप में उते देखने आये। चक्रवर्ती उम समय स्नानागार में सुगन्धित तैलमर्दन करा रहे थे, आभूषण रहित थे, फिर भी उनका रूप दर्शनीय था। चक्रवर्ती द्वारा विप्रों से आगमन का प्रयोजन पूछे जाने पर उन्होंने बताया—“हम आपके अलौकिक रूप का वर्णन सुनकर देखने के लिए आये थे। परन्तु हमने जैसा सुना था, उमके सत्राया देखा।” यह सुनकर सनत्कुमार अपने रूप की प्रशंसा से रूप गविन होकर कहने लगे—“भूदेवो! आपने अभी तक मेरा रूप देखा ही नहीं है? रूप देखना ही तो जब स्नान करके वस्त्राभूषण पहन कर राजममा के मिहामन पर बैठूँ, तब देखना।” विप्रों ने कहा—“अच्छा ऐसा ही करेंगे।” राजा भी शटपट स्नान करके वस्त्राभूषण पहन कर मिहासन पर बैठे और उन दोनों ब्राह्मणों को बुलाया। ब्राह्मणों ने चक्रवर्ती का रूप देखकर विप्र स्वर में कहा—“मनुष्य के रूप, जीवन, लावण्य, दणभर तो बहुत अच्छे दिसाई देने हैं, पर शेट है, धणपर मे वे एरुदम चुच्छ हो जाने हैं। यह सुनकर चक्रवर्ती ने कहा—“विप्रो! मेरा रूप देखाकर आप शेट बरी प्रकट करते हैं?” उन्होंने कहा—“राजन्! आप जानते ही हैं, देवता राया मे पैदा होने हैं, तब से लेकर उनका आभुषण छह महीने बाकी रहे, वहाँ तक उनका रूप और जीवन ज्यो का र्यों रहता है, परन्तु मनुष्य के तो जीवन-अवस्था तब रूप तेज और जीवन बढ़ने हैं, उमके बाद उशों-उशो उम्र दकती जानी है, र्यो र्यों दकता हुआ होता जाता है। अगर आपके रूप में तो हमें विशेष आश्चर्यजनक बात दिसाई दी है। आपके रूप अभी ही हमने देखा और अभी ही उमका हुआ प्रारम्भ होने लगा है।” सनत्कुमार ने पूछा—“आपको यह कैसे पता लगा?” इन्होंने कहा—“हम देव हैं। आपके रूपगर्व करने के माध ही आपके शरीर में ७ महारोग उत्पन्न हो गए हैं—(१) बृष्ट, (२) शीघ, (३) उबर, (४)



यह है कि मनुष्य लाभ और अनाम में समभाव में रहे, न हट्ट हो न दट्ट, न लाभ के समय पूने और न अनाम के समय गडके ।

लाभ के समय सर्व में फूलने बानो का बिलना बुरा हान होता है, यह एक प्राचीन धार्मिक कथा पर से मुनिः—

परशुराम जगदग्नि तापस का पुत्र था । उसने एक बार एक रात्रि विद्याधर की सेवा की, इतने प्रगल्भ होकर विद्याधर ने परशुराम को परशु विद्या दी । परशुराम ने उस परशु विद्या को गिद्ध किया और जगत में परशुराम नाम से विख्यात हुआ ।

परशुराम की माना रेणुका एकबार अपने सह्योई के यहाँ बहन से मिलने गयी थी । वहाँ सह्योई के फूलवाने पर रेणुका उसके साथ व्यवहार में प्रवृत्त हो गई । यना लगा तो क्रुद्ध होकर जगदग्नि रेणुका को घर लाया । परशुराम ने जब यह बात जानी तो अपने परशु से अनन्तवीर्य को मार डाला । उसकी गद्दी पर वृत्त वीर्य बैठा, उसने अपने विरुद्धता जगदग्नि को मार डाला । यह जान कर परशुराम अत्यन्त कोरायमान हुआ और जाग्रन्व्यमान परशु से वृत्तवीर्य के साथ मग्राभ करके उनका वही नाम लामा कर डाला । वृत्तवीर्य की जगह स्वयं गद्दी पर बैठा । वृत्तवीर्य की गर्भवती रानी भागकर एक तापस के आश्रम में पहुँची, वही भय-विह्वल होकर उसने पुत्र प्रसव किया । उसका नाम रखा मुभूम । वही यह तापस आश्रम में ही बड़ा होने लगा ।

परशु विद्या की निष्ठा का लाभ परशुराम के लिए भयकर सर्व का कारण बना । वह लाभमद से उत्पन्न होकर जहाँ-जहाँ क्षत्रिय को देखना, उसे परशु से मौत के घाट उतार देता । उसकी परशु क्षत्रिय के पाम जाने ही प्रज्वलित हो उठनी । एक वह तापस-आश्रम के निकट से गुजर रहा था, तभी उसकी परशु प्रज्वलित हो उठी । उसने तापस-आश्रम में जाकर पूछा—“यहाँ कोई क्षत्रिय है ?” तापसों ने कहा—“यहाँ तो हम क्षत्रिय हैं । मारना हो तो मार डालो ।” उसकी शका दूर हुई । सो परशुराम ने क्रमशः सात बार पृथ्वी को नि क्षत्रिय (क्षत्रियरहित) कर दी । क्षत्रियों की हत्या करने उनकी दाड़ों से फाल भर लिया ।

एक दिन परशुराम ने एक नैमित्तिक से पूछा—“मेरी मृत्यु किसने होगी ?” नैमित्तिक बोला—“जो तेरे तिहासन पर बैठेगा, और जिसके देखते ही धान में रसी हुई दाड़ों कीर बन जाएगी तथा उस खोर को जो खायेगा, वही तुझे मारने वाला होगा ।” यह सुनकर परशुराम ने उसे पहचानने के लिए एक दानशाला स्थापित की, वही एक गिद्धागत रत्नवाया और उसके आगे वह दाड़ों का धान रखा ।

इधर वैनाश्य पर्वत निवासी मेघनाद विद्याधर ने एक नैमित्तिक में पूछा कि मेरी पुत्री का कर कौन होगा ?” उसने बताया कि मुभूम चक्रवर्ती होगा । तब से वह मुभूम चक्रवर्ती की सेवा में रहने लगा । जब मुभूम जवान हुआ तो माता से पूछा— “क्या दुनिया इतनी ही है ?” माता ने उसके जन्म से लेकर अब तक का ..



है कि वास्तव वैभव के अहंकार को प्रतिस्पर्धा की हर गमम बिन्ता बनी रहनी है, आध्यात्मिक वैभव में कोई बिन्ता नहीं, प्रतिस्पर्धा की। उमका अहंकार होता ही नहीं।

गजमुच, ऐश्वर्यमद मे मनुष्य को दूगरे मे, या अपने बराबरी वाले मे प्रतिस्पर्धा की बिन्ता रहती है? भौतिक ऐश्वर्य की प्रतिस्पर्धा मे जैसे दशार्णमद्र को दन्द्र के आगे हार खानी पडी, वैसे ही दूगरो को खानी पड गकनी है।

### श्रुतमद के रूप में

श्रुतमद भी मनुष्य का भयंकर शत्रु है। यह जिसके जीवन में आ जाता है, वह ज्ञान, शास्त्राध्ययन, विज्ञान, ध्यान साधना आदि में आगे नहीं बढ़ पाता। श्रुत का अर्थ यहाँ सम्पज्ञान, शास्त्रज्ञान, अध्यात्मविज्ञान, ध्यान-साधना आदि है। मनुष्य पाहे जिनना पढ़-लिख जाय, चाहे वह अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने, गमस्त विद्याओं और दर्शनों में पारगण हो जाए कि अगर ज्ञान के साथ अहंकार रूपी शत्रु पुन गया है, विनय क्षुप्त हो गया है, तो वह ज्ञान न तो अपने लिए कल्याणकारी होना है न दूगरो के लिए। वह ज्ञान केवल अहंकार की भूय मिटाने के लिए होना है। ज्ञान के मद का अनुभव भर्तृहरि को बहुत ही कटु हुआ है—

“यदा किञ्चित्तोऽहं गज इव मदान्धः समभवम्  
तदा सर्वतोऽस्मीत्यभवदवतिप्तं मम मनः।  
यदा किञ्चित् किञ्चित् ब्रुधजन सकाशादवगतम्  
तदा मूर्खोऽस्मीति ह्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥”

—जब मैं थोड़ा-थोड़ा जानता था, तब हाथी की तरह मदान्ध बन गया था, तब मेरा मन ‘मैं सर्वज्ञ हूँ’ इस अभिमान से लिप्त हो गया था। जब मैंने विद्वानों की सगति में कुछ कुछ जाना, तब मुझे भान हुआ कि मैं तो मूर्ख हूँ, और इस प्रकार मेरा ज्ञान का मद उबर की तरह उतर गया।

उपाध्याय पद्मोबिजय जी उस युग के पुरन्दर विद्वानों में माने जाते थे। वे अनेक विषयों में पण्डित व बुधाद्यमुद्रि थे, प्रखरवक्ता भी थे। काशी में पण्डितों की सभा में भारी विषय प्राप्त करने में उन्हें ‘व्यायविशारद’ की पदवी मिली थी। मस्त्रुत में पण्डों धाराप्रवाह भाषण देने थे। परन्तु जब वे वाशी से दिल्ली पधारते नव ज्ञान के अभिमान वज्र बार इवज्जार्ण रखते थे। एक दिन मूब धूमधाम से व्याख्यात हो रहा था। व्याख्यान के समय भी रयापनाजी पर बार हाडिया रनी गई थी, जिसका मतलब था—‘बारो दिनाओ में अपनी विद्वता की मुपग पनाका पहुर रही है।’ एक बूरी आधिका ने माह्य करके पूछा—“मटारात्रथी! क्या गीतम स्वामी एवं मुधमस्त्रिवामी भी आप जैसे ही विद्वान थे! उपाध्यायवथी ने बहा “मैं तो उनकी बरणरज भी नहीं हूँ। वे वणधर महाप्रमु हैं, मैं उनका कुछ ठेवक हूँ।”





## अप्रमाद : हितैषी मित्र

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

आज मैं आपके सामने ऐसे जीवन की चर्चा करना चाहता हूँ, जो हम सबके साधनामय जीवन का हितैषी मित्र है। साधनामय जीवन का क्षण-क्षण का वह प्रहरी है, हमारे साधनामय जीवन में मत्तन उसका हितैषी मित्र की तरह साथ रहना आवश्यक है। जिसे सामान्य या विशिष्ट किसी भी प्रकार की साधना करते समय एक मिनट के लिए भी भूला नहीं जा सकता, जो हमारे जीवन का साथी है, मुहूर्त है, हितैषी मित्र है। पद-पद पर हमें मार्गनिग (चेतावनी) देता है, खतरे की घंटी हमारे मनमस्तिष्क में बजा कर हमें सावधान करता है, वह है अप्रमाद। महर्षि गौतम ने इसे ही अटारहवें जीवन सूत्र के रूप में प्रस्तुत किया है। वह सूत्र इस प्रकार है—

“किं ह्यमप्यमाओ”

प्रश्न—हित—हितैषी मित्र कौन है ?

उत्तर—अप्रमाद।

अप्रमाद हमारे जीवन का हितैषी, सदा हित चाहने वाला, कल्याणकारी एक जागृत रहने वाला मित्र है।

अप्रमाद एक सन्मित्र

सगर में मित्र तो बहुत में होते हैं, परन्तु अधिकांश मित्र स्वार्थी, अस्थायी और दुर्व्यसनो में पमानेवाने होते हैं, वे मित्र की अपेक्षा भूमि या शत्रु का काम ज्यादा करते हैं। परन्तु सच्चा मित्र स्वार्थी नहीं होता, वह दुःख और विपत्ति में सदा साथ रहता है, वह दुर्व्यसनो में नहीं धकेलता, बल्कि दुर्व्यसनो में फसते हुए मित्र को निकालता है, दुर्व्यसन छुटा कर सम्मार्ग पर सगाता है, वह मित्र को पदे-पदे सावधान करता है। भर्तृहरि योगी ने नीतिशास्त्र में सन्मित्र का लक्षण इस प्रकार दिया है—

पापाग्निवारयति धोत्रयने हियाय  
गुह्यं निगूहति, गुमान् प्रश्टीकरो-  
आपद्गतं च न अहति, बहानि च  
सन्मित्र सक्षममिदं प्रवर्तति सने



### अप्रमाद वा विरोधी : प्रमादविरोधी

इसके अनिश्चित अप्रमाद का स्वभाव समझ लेने पर आरंभो यह विवेक प्रतीति हो जायगी कि अप्रमाद साधक का स्वभाव मत्सर और मना क्यों है ?

वास्तव में अप्रमाद प्रमाद के विरोधरूप अर्थ में है, परन्तु यह विरोध रूप पदार्थों का विरोध नहीं है, जैसे कोई बड़े कि अप्रमाद यानी जो प्रमाद न हो, तो पत्थर, पानी, मिट्टी, देड़ आदि अप्रमाद है। ऐसा कहना और समझना गलत होगा। यहाँ विरोध सद्भिन्न और तत्समहम अर्थ का सूचक—पर्युदास है, प्रत्यक्ष नहीं। इसलिए प्रमाद में भिन्न—प्रमाद के सहज कोई भावात्मक पदार्थ—अप्रमाद कहना है। अर्थात्—प्रमाद का विरोधी भाव अप्रमाद है। अतः अप्रमाद को समझने के लिए पहले प्रमाद और उसने विभिन्न रूपों का समझना आवश्यक है।

### प्रमाद : आत्म-विरमृति

प्रमाद का एक अर्थ है—विरमृति या भूल। मनुष्य पर ही सामान्य वस्तु वही भूल जाता है, वह तो धम्म हो सकती है, क्योंकि वह वस्तु न मिले तो वह दूसरी खरीदकर ले आता है; परन्तु आत्मा को—अपने स्वरूप को साधक भूल जाए, यह तो बहुत बड़ी अधम्म भूल है। ऐसी भूल में तो मापना आगे चम ही नहीं मचती। जितनी भी साधनाएँ हैं, वे सब ही सब जड़-चेतन के—आत्मा-अनात्मा के या जीव-अजीव के भेदविज्ञान पर आधारित हैं। अगर मनुष्य आत्मा का या अपना स्वरूप ही भूल जाए—और अजीव में ही रमण करने लगे, यानी अपनी आत्मा को, आत्मा के निजी गुणों तथा स्वभाव को ठाक में रखकर बार-बार प्रोधादि विभाषों को ही अपने मानने लगे या उनमें ही प्रसन्न हो जाए अथवा सांगारिक जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पर-पदार्थों को अपना स्वरूप मानने लगे तो उसकी साधना में प्रगति नहीं हो सकेगी। इसलिए आत्म-विरमृति सबसे बड़ा प्रमाद है अथवा आत्मा भूल या गलती से किसी पर प्रोथ या अभिमान करे, किसी वस्तु पर लोभ या आसक्ति बदे, अथवा किसी के साथ छल-कपट करे तो वहाँ साधक भी गलती या भूल समझी जाती है, यह भी प्रमाद है। कई बार मनुष्य अज्ञान या मोह या अहंकार के बन्धीभूत होकर अपने आपको भूलकर गलती से कुछ का कुछ समझने लगता है। जैसे कोई साधक अपने आपको धनिक, भारतीय, अमुक जाति का, अमुक प्रान्त का- अमुक भाषा वाला अथवा विद्वान या अविद्वान, जानी या अजानी, दुबला या मोटा समझने लगे तो वास्तव में साधना की दृष्टि से यह प्रमाद है।

मनुष्य अपने आपको कैसे भूल जाता है ? इसके लिए एक व्यावहारिक दृष्टान्त सीलिए—

मारवाड़ में गंताजी नाम का एक बनिया था। नदी के किनारे उसने खरवृजे की बाड़ी लगाई। बाड़ी के पाम ही वंठ के नीचे एक झोंपड़ी बना ली, जिसमें वह चला-बैठता था। एक दिन खेनाजी खरवृजे लेकर बाजार में बेचने गए। वापस



पर, उनगे दैत मेने है।" नाई बोला—मैं भी इमो घाम्ने यही जा रहा हूँ।" चलो, हम साथ ही चले।" बाड़ी पर पहुँचकर उन्होंने सब जगह बूँद निया पर मेताजी न मिये। मुनिमा जी ने कहा—आज मैं उनके घर पर गया था, तो उनकी पत्नी ने कहा—"उनका तो ७-८ दिन से कोई पता नहीं। न जाओ कहाँ चले गए?" इस पर नाई नवाब ने बोला—"अभी तीन-चार दिन पहले तो मैंने उन्हें इमी पेड़ की छाया में साते देखा था। भरनीद से मैं उनकी दादी-मूर्छे शाक कर गया था।" यह सुनते ही पेड़ पर बैठे मेताजी जोर से बोले—"अरे! दादी-मूर्छे तू मूड गया था? तो मेताजी यह बैठा।" यो कह कर वे पेड़ से नीचे उतरे और नाई तथा मुनिया जी से मिये।

बन्धुओ! आज अधिकांश लोग अपने आत्म-स्वरूप को मेताजी की तरह भूल जाने हैं। मोह में डूब जाना प्रमादवश भी आत्म-विस्मृति रूप प्रमाद है।

प्रमाद असावधानी अविवेक आदि अर्थों में

प्रमाद का दूसरा अर्थ है—अभावधानी, गफलत, अजागृति, अविवेक, मूर्च्छा या होश में रहना आदि। इसी प्रकार बोलने, सोचने या किसी प्रवृत्ति को करते समय ध्यान न रखना। जब भादमी असावधानी या लापरवाही करता है तो वह कितना मुफ्तान कर बैठता अपनी आत्मा का? इस विषय में पाश्चात्य विचारक Feltham (फैल्थम) से विचार कितने मननीय हैं?—

"Negligence is the rust of the soul, that corrodes through all her best resolves"

असावधानी या लापरवाही आत्मा पर लगा हुआ जग है, जो उसको तमाम सर्वोत्कृष्ट मन्त्र के मारफत क्षीण कर देती है।

जरा-या असावधानी रूप प्रमाद किन तरह सर्वनाश कर देता है? इस सम्बन्ध में सैकड़ों वर्ष पहले की ब्रह्मदेश की एक ऐतिहासिक घटना मुनिए—

ब्रह्मदेश का एक राजा अपने महल के तीमरे मजिद की अटारी पर बैठकर शहद का मरबन पी रहा था। अचानक घोड़ी-सी बूँदें राजा की असावधानी से नीचे गिर पड़ीं। उन्हें घाटने के लिए कुछ मन्त्रियों उन पर बैठीं। मन्त्रियों पर छिपकली ने झरट मारी। छिपकली को देखते ही एक बिल्ली उस पर टूट पड़ी। बिल्ली के गिहार के लिए तीन-चार कुत्ते आ घमके। कुत्तों में अन्दर ही अन्दर सझाई होने लगी। उनका पक्ष लेने दो दरबारी पट्टोग से आ गए। दोनों पक्षों के बीच जमकर सझाई हुई। एक पक्ष में मेना बुनाई और दूसरे पक्ष की ओर से सझर नागरिक मीदान में आ दटे। सारे शहर में बतवा हो गया। महल को आग लगा दी गई। इस प्रकार राजा की असावधानी (प्रमाद) ने गिरी हुई शहद की कुछ बूँदों ने शायद का सर्वनाश कर दिया। यान्त्रिक में यान्त्रिक की जरा सी भूल भी सर्वकर परिणाम



पर आई। आने ही शोध में भ्रमना हुआ मर्ग बोला—“क्या तुम वहाँ छूती पर चढ़ा दिया था कि तू हलनी देर में आई है, मैं यहाँ बूना मर रहा हूँ।” चन्द्रा भी दुःख में बेचैन थी, वह भी रोग में आकर बांगी—“क्या तेरे हाथ टूट गये थे कि छीके पर रगा हुआ भोजन भी उतावकर नहीं खा सका।” इस प्रकार दोनों ने घाबिक प्रमाद के कारण गगन बचन प्रयोग किया, जिनमें निवृष्ट कर्म बन्ध गये।

एक बार दोनों के अशोभाय में नगर में भानुगुण आचार्य पधारे। उनसे दोनों ने जैनधर्म का बोध प्राप्त करके श्रावण धर्म अंगीकार किया। दोनों ने त्रिकाल तक श्रावण धर्म पालन करने के बाद वृद्धावस्था में शुभ परिणामों से चारित्र्य अंगीकार किया। अन्तिम समय में मंगरना करके समाधिमरणपूर्वक दोनों देवलोक में गये। वहाँ का आयुष्य पूर्ण करने मर्ग के जीव ने ताम्रनिपिनगरी में कुमारदेव नामक सेठ के यहाँ ह्रीनुआ नामक भार्या की कुशिल में पुनरुप में जन्म लिया। उसका नाम रखा गया—अरणदेव ! इधर चन्द्रा के जीव ने भी देवलोक का आयुष्य पूर्ण करने पाडला-पदनगर में जभादित्य सेठ की पत्नी लानुआ की कुल से कन्या रूप में जन्म लिया। उसका नाम रखा गया—‘देवणी।’

सयोग वषा पीवन-अवस्था आने पर देवणी की मगाई अरणदेव के साथ हुई। विवाह होने में पहले ही अरणदेव ने श्यापार के लिए समुद्र मार्ग से परदेशगमन किया। वह महाकहाह्दीप पहुँचा। वहाँ से वापस लौटते समय दुर्भाग्य से उसका जहाज टूट गया। अतः लकड़ी के एक तख्ते को अरणदेव और महेश्वर दोनों ने पकड़ लिया। तख्ता तैरता-नैरता समुद्र के किनारे आया। समुद्रतट पर ही पाडलापथ का उद्यान था, दोनों वहाँ पहुँचे। महेश्वर ने कहा—“अरणदेव ! तुम्हारा तो यहाँ समुद्राल है, चलो न नगर में चली चले।” अरणदेव बोला—“ऐसी दीन-हीन हालत में समुद्राल जाना उचित नहीं है।” महेश्वर ने कहा—“तो फिर तुम यहाँ देवालय में बैठो, मैं बाजार में जाकर कुछ खाने की सामग्री ले आऊँ।” यो कहकर महेश्वर नगर में गया। पीछे अरणदेव को खाने की चकान के कारण देवालय में नींद था गई।

यही इस अवसर पर देवणी के पूर्वकृत वाचिक प्रमाद (‘तेरे हाथ टूट गये थे क्या?’) के कारण बन्धे हुए कठोर कर्म उदय में आए। देवणी भवन के उद्यान में थी। वहाँ खोर आए, और उन्होंने देवणी के हाथों में बहुमूल्य मानिक के दो कड़े देखे तो उनका जी ललचाया। उन्होंने आधे तो निकाल लिये, परन्तु बहुत ही कड़े थे, इस कारण पूरे न निकल सके। अतः खोर ने उसका मुहबन्द करके छुरी से हाथ काट लिए और दोनों कड़े निकाल लिये। ज्यों ही वे कड़े लेकर भागने लगे, उद्यानराजक ने दस लिये, वह खोर से बिस्लाया। अतः तुरन्त बौनवाल आ गया। उसने खोर का पीछा किया। खोर भी दौड़ने में हीक गया, एक भी गया, सोचा कि अब आने नहीं सदा जा सकेगा। अतः उसी देवालय में घुसा। वहाँ अरणदेव सोया हुआ था, अतः खोर दोनों कड़े तथा छुरी उसके पास रखकर मन्दिर के शिखर में छिप गया।





इसी तरह योग के पाठ में भी बताया है—

'योगहृत्समं क्षणशुचान्ताए'

योग का सम्यक्प्रकार में पानन न किया हो। इसीप्रकार योग में प्रमादन एवं प्रतिवेदन भी सम्यक्प्रकार में न किया हो तो वह भी योग (अति-चार) है।

आज देवों, भगवान् महावीर ने मायकों को गाने, पीने, सोने जागने, भिडा, प्रतिवेदन, प्रमादन, स्वाध्याय, ध्यान, वायंपर्ग, तप, शसन, आदि के साथ विवेक को जोड़ा है। जितनी भी क्रियाएँ कर्मों, चाहे वे छोटी हों, या बड़ी हों, परन्तु पूरे होश (विवेक) के साथ करो। होश या विवेक के बिना की गई बड़ी से बड़ी क्रिया भी प्रमाद युक्त है और कर्मबन्ध जनक है। परन्तु विवेक पूर्वक की गई छोटी से छोटी क्रिया भी अप्रमाद युक्त है वह कर्मबन्ध में मुक्त कर सकती है, कम से कम पाप कर्मों के बन्ध से तो मायक को मुक्त कर ही सकती है।

प्रत्येक क्रिया अविवेक से करना : प्रमाद

आज हम देख रहे हैं कि अधिकांश लोग वात्सल्य या घृणा, मैत्री या शत्रुता, शोध या दाया, विनय या अहंकार आदि जो कुछ भी करते हैं, प्रायः सोये हुए—अविवेक से करते हैं।

अप्रमाद का सन्देश है, सोना है तो भी विवेक से और जागना है तो भी विवेक से। इसका मतलब है—विवेक अप्रमाद का अंग है। उसकी पहरेदारी प्रत्येक क्रिया पर रखी जाए तो फिर अपने आप मनुष्य गलत दंग से जी नहीं सकेगा। विवेक पूर्वक जो साधक सोएगा, वह सोवेगा कि मुझे कितनी देर सोना है, कहाँ सोना है? कैसे सोना है? क्यों सोना है? कब सोना है? किस प्रकार के बिछौने पर सोना है? शरीर को शसन की कितनी जरूरत है? शसन काल में किन-किन दोषों या विकारों से बचना है? ऐसा अप्रमादी व्यक्ति सोता हुआ भी जागृत रहना है। इसीलिए आचार्य ने कहा है—

'मुस्ताऽमुनिषो मुनिषो सदा जागरति'

अमुनि ही सुप्त रहने हैं, मुनि तो सोने हुए भी सदा जागृत रहने हैं। भगवद्-गीता में भी साधारण नास्तिक प्राणी और योगी की पृथक्-पृथक् जीवन दशा का वर्णन करते हुए कहा है—

या निशा सर्वमूतानां, तस्यां जागति संयमी।

यस्यां प्राप्तिं भूतानि, सा निशा परयतो मुनेः॥

समस्त प्राणियों के लिए जो अंधेरी रात है, उसमें सयमी पुरुष जागृत रहना है और जिस घोर रात में सामाजिक प्राणि जागते हैं, वह इष्टा मुनि के लिए अंधेरी रात है।



बर्त व्यक्ति किसी आश्चर्यक कार्य को आगे पर टालने रहते हैं। आज-कल, परमो करने-करने बरगो चीन जाने है, वह कार्य फिर ऐसा गटाई में पड जाता है कि होता ही नहीं, एन बार एक काम में टालमटुन की आदत पड जाती है, तो फिर वह हर काम में टालमटुन करता है। यो एक दिन जिदगी पूरी हो जाती है और जीवन के मुनहरे अक्षर चने जाते हैं, अन्त में व्यक्ति हाथ मलता रह जाता है। यह प्रमाद इनका भयंकर है कि अन्त में व्यक्ति को मित्राय निराशा और दुःख के और कुछ पप्ने नहीं पडना।

एक बुद्धिवा के पाग गर्दी में ओढ़ने को कुछ न था। सोचने लगे—'कपड़ा और रुई पडी है, बन मुवह उठकर गुदडी बना लूंगी।' मुवह हुआ तो उमने सोचा—'अधो क्या जन्डी है, लाम को बना लूंगी। शाम आई, अंधेरा होने लगा, सोचा—अब अंधेरे में तो कुछ बनेगा नहीं, अब तो बन ही बनाऊंगी।' रात हुई, बुद्धिवा को खूब जांडा लगा। सोचा—मुवह उठूंगी और जरूर गुदडी बना लूंगी। किन्तु मुवह हुआ, पाग हुई, रात पडी, एक के बाद एक दिन बीतने लगे, पर बुद्धिवा की गुदडी नहीं बनी। यो करने-करते सर्दी को मौसम निकल गई। सोचने लगे—'अब गुदडी की क्या जरूरत है? अब तो गर्मी की मौसम आई। अब तो अगली सर्दी की मौसम में बनाऊंगी। इस तरह करते-करते पार शीत ऋतु आई और चली गई, लेकिन बुद्धिवा की गुदडी नहीं बनी, मो नहीं बनी। उमकी उम्र भी यो मनुष्ये करने-करते खत्म हो गई। इसी प्रकार आगे पर टालने वाले साधक मनोरथ करते रह जाने हैं, उम्र डन जाना है, बुद्धिवा घेर लेता है, बर्त रोग आकर डेरा जमा लेते हैं, फिर सारे ही अंग विधिन हो जाते हैं, कुछ करने-धरने लायक नहीं रहते। इस तरह प्रमाद करने का नतीजा यह होना है कि व्यक्ति बिना ही धर्म साधना किये खाली हाथ चला जाता है। बार्नाइस के शब्दों में—

“आलस्य मे स्थायी निराशा है।”

“In idleness there is Perpetual despair”

प्रमाद निष्क्रियतापूर्वक का कालयापन

बहुत-से लोग निष्क्रियतापूर्वक अपना समय बिताते रहते हैं। निठलने और निरम्मे रहने की आदत व्यावहारिक जीवन में जैसे खराब है, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन के लिए भी बुरी है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना-ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य को आराधना करने का उत्तम अवसर मिलने पर भी उमने कुछ लाभ नहीं उठाता और निष्क्रिय बना रहता है, उमे अन्त में परबात्ताप के मित्राय और कुछ नहीं मिलना।

पाश्चात्य विचारक टावरन एडवर्ड्स (T)ron Edwards) के शब्दों में—

“Indolence is the dry rot of even a good man's soul & good Character....It is the waste of what might be a happy and useful life.”



दिनभर एक मिनट भी बिश्राम करने का अवसर नहीं मिला। गांधीजी के साथ महादेव भाई और बाना बालेनकर भी थे। तीनों काफी रात गये अपने स्थान पर सोते। पकान के मारे उनके शरीर बुरी तरह जलपिन हो चुके थे। आते ही तीनों चारपाइयों पर पड़ गए और निद्राधीन हो गए।

घार बने नींद टूटी। गांधीजी और उनके साथियों का नियम था कि वह मार्गशासक सोने से पूर्व और प्रातःकाल जगने ही प्रार्थना किया करते थे। गांधीजी ने प्रातःकालीन प्रार्थना के लिए एकत्रित हुए काका बालेनकर से पूछा—“शाम की प्रार्थना का क्या हुआ?” काका ने उत्तर दिया—“बापूजी! मैं तो चकावट के मारे आते ही सो गया, प्रार्थना करना बिलकुल भूल गया। महादेव भाई ने भी इसी आगम्य की बात कही और कहा कि बीच में नींद टूटी, तब मैंने चारपाई पर मन ही मन प्रार्थना कर ली और प्रभु से क्षमा माँग कर सो गया। मगर गांधीजी को इस प्रमाद का दुःख बहुत गहरा था। वे बोले, आज मेरा मन बहुत ही अस्वस्थ है, मैं कल शाम की प्रार्थना क्यों नहीं कर सका? क्या सोना इनना आवश्यक था कि भगवान का स्मरण तक न किया जाता?” जब काका ने बापूजी से कहा—“बापू! आप तो कहते हैं—भगवान के नाम से उनका काम बड़ा है। तब उनका काम करते हुए हम सो गए, इसमें बुरा क्या हो गया?”

गांधीजी ने कहा—“दुःख तो इस बात का है कि मैं कहीं आलस्य और प्रमाद से नाम और काम दोनों में भूल न करने लग जाऊँ।”

बगुत्रों! निद्रा के साथ भी प्रमाद न आ जाए, इस बात का विवेक प्रत्येक साधक को होना चाहिए।

हमारे शास्त्रों में द्रव्य निद्रा की अपेक्षा भावनिद्रा को बहुत ही भयंकर माना गया है। भावनिद्रा एक प्रकार की अज्ञानगुणि है, जिसे मैंने आत्म-विस्मृति कहा है, यह एक प्रकार की भावनिद्रा ही है। मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, सत्तर, अहिंसा आदि के बंधन में पड़ कर भावनिद्रा में सो जाता है। उसमें भयंकर अनिष्ट हो जाता है। आत्मा का अमूल्य धन ये चोर भावनिद्राधीन मनुष्य की गफलत का साम उठाकर चुरा ले जाते हैं।

इसीलिए भगवान महावीर ने कहा है—

“सुतेषु यावी पण्डितुद्विगीरी,  
न सोत्तमे पण्डि आमुपन्ने।”

आनुपन्न पण्डित पुरुष को मोह निद्रा में सोये हुए प्राणियों के बीच में रह कर भी सदा जागरूक रहना चाहिए। प्रमादाचरण पर उसे कभी विश्राम न करना चाहिए।

**प्रमाद के मुख्य कारण**

प्रथम यह होता है कि प्रमाद जब एक प्रकार का भाव है, और वह अन्तर से ही पहले पैदा होता है, तब बाहर से उसका विविध रूप में प्रयोग होता है, अतः



### अप्रमाद के संदेश

अप्रमाद का मुख्य संदेश भगवान महावीर ने गौतम स्वामी को सच्य करके समस्त साधकों को दिया है—

‘समय गोपम । मा पमायए’

हे गौतम ! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर ।

प्रमाद मृत्यु है और अप्रमाद ही अमरत्व है । जहाँ मृत्यु का-सा नाटक जीवन में होता है, वहाँ सर्वत्र भय रहता है, मगर अहाँ अप्रमाद है, वहाँ मृत्यु का कोई भय नहीं है, अप्रमादी मनुष्य मृत्यु आती है तो भी हँसते-हँसते उसे बरण करता है । वह मृत्यु से भय नहीं खाता, दरम मृत्यु को अपना सगा मानता है ।

अप्रमाद का संदेश यह है कि मनुष्य ! तुम्हें बहूमृत्यु एवं छोटा-सा जीवन मिला है, इसे प्रमाद में खोकर नष्ट मत करो अप्रमत्त साधना के द्वारा इसे मार्थक करो । इनका एक क्षण भी व्यर्थ की बातों में मत खोओ । शरीर और मन को निष्क्रिय और आरामनलव न बनाओ, किन्तु इनके द्वारा जीवन की उत्तम साधना अप्रमादी होकर करो ।

भाग्यवाद के धरोरे रह कर आलस्य और अकर्मण्य मत बनो, क्योंकि ऐसा करना महाप्रमाद है, किन्तु ज्ञान-दरंगम-चारित्र्य की मोक्षसाधना के लिए अविरत पुष्ट्यार्थ करो । अकर्मण्य होकर बैठना महापाप है, अकर्मण्य और आलसी व्यक्ति तमोगुणी है, वह अपने जीवन को प्रमाद में खोकर नरक का पथिक बनता है । जीवन सत्पुरुषार्थ में ही निरतरता है, प्रमाद से नहीं । इसलिए सत्पुरुषार्थ एवं शुभकर्तव्य करते रहो । मोक्षमार्ग की ओर—लक्ष्य की ओर चलते चलते, बढ़ते चलते रहते हैं वे ही एक दिन नक्ष्य का किनारा पा जाते हैं, जो आलसी एवं प्रमादी बन कर बैठे रहते हैं, वे सैकड़ों जन्मों में भी संसार समुद्र को पार नहीं कर सकते । इस लिए ‘कर्मण्येवाधिकार स्वभा फलेषु कवाचने’ इस सिद्धान्त के अनुसार कर्तव्य, धर्मा-चरण में फलाकांक्षा एवं भाग्यवाद से दूर रह कर पुष्ट्यार्थ करते जाओ । इसीलिए अप्रमाद का संदेश है—

‘उद्विठए मो पमायए’

जो कर्तव्यपथ पर उठ खड़ा हुआ है, उसे फिर प्रमाद नहीं करना चाहिए । अप्रमाद को जीवन का सच्चा साथी मान कर बनो । महर्षि गौतम ने इसीलिए शब्द कहा है—

‘कि हियमप्यभाओ’

हितैयी मित्र कौन है ? अप्रमाद ही है ।





बड़े शहरो में ठग लोग इसी प्रकार भोलेभाले लोगों को फँगाते हैं। एक बार एक कच्छीभाई बम्बई में एक मोहल्ले की छोटी-सी गली में से होकर जा रहा था। अचानक पीछे से एक आदमी आया और कुछ ही फासले पर एक सोने की डली पड़ी थी, उसे कच्छीभाई के देखते उठा कर भागने लगा। उसके पीछे एक दूसरा व्यक्ति आया, जिसने इस कच्छीभाई के कान में धीरे से कहा—“सैठ ! यह आदमी सोने की डली लेजा रहा है, अपन इससे खरीद लें। और बाजार में बेचकर बहुत मुनाफा कमायेंगे। आपके पास बितने रुपये हैं ? निकालिये डाटपट। पीछे यह हाथ में नहीं आयेगा।” कच्छीभाई ने अपनी जेब में चालीस रुपये थे, वे निकाले। उस घूर्त ने कहा—“इतने से काम नहीं होगा। सोना कम से कम २०० रुपये का है। हम इसे आपके दामों में ले लेंगे और क्या है आपके पास ?” कच्छीभाई ने कहा—“मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक घड़ी है।” उस घूर्त ने कहा—“हाँ, हाँ, बस, अब काम बन जाएगा। मुझे क्या करना है। मैं आपको ही यह सोने की डली उससे दिनवा दूँगा।” बस, उस घूर्त ने दौड़कर सोने की डली वाले घूर्त को पकड़ा। उसे गिरफ्तार कराने आदि की झूटमूट धमकी दी और वे ४० रुपये तथा लगभग ६० रुपये की हाथपड़ी देकर उससे सोने की डली ली और उस कच्छीभाई को दे दी।

कच्छीभाई बहुत प्युन होता हुआ जा रहा था। परन्तु मन में शका थी कि कहीं यह खोरी का माल हुआ और पुलिस को पता लग गया तो मुझे गिरफ्तार कर लिया जाएगा। इसी चिन्ता ही चिन्ता में वह मुख्य सड़क पर आ गया। और एक टैक्सी में बैठकर गिवाजी रोड पहुँच गया। वहाँ अपने एक सम्बन्धी से टैक्सी का किराया दिलवा दिया। उसने अपने सम्बन्धी को वह सोने की डली दिखाई और ४०) और एक घड़ी देकर खरीदने की बात कही। सम्बन्धी के मन में सोने की डली देखते ही शका हुई कि यह सोने का मुलम्मा चढ़ाया हुआ है। वह उस डली को लेकर पास में ही रहने वाले एक मुनार के पास गया। उसे दिखाकर पूछा—“देखो तो, यह सोना बितने का है ?” मुनार ने उसे कसौटी पर कसा और तैज़ाब में उसका एक निरा डाला तो तुरन्त पता लग गया कि यह सोना नहीं, पीतल पर सोने का मुलम्मा चढ़ा हुआ है। लगभग दस रुपये का होगा।” यह सुनते ही कच्छीभाई का हृदय बैठ गया। अच्छा, घोना खाया, आज तो ! सोने के बदले पीतल दे गया।”

मैं आपसे पूछता हूँ, कि उस कच्छीभाई ने ऐसा घोसा क्यों खाया ? माया के चक्कर में आकर ही तो ? वह माया को पहचान न सका। उन घूर्तों की माया, और सोने की ओट में छिपाया हुआ पीतल उसकी आँतों में देख सकीं। उन आँतों को यह घोसा नहीं खाना चाहिए था।

माया : छोटे तितकें की तरह ख्याय

शेकस्पियर के शब्दों में—

‘All that glitter are not gold.’

समय कमजोरी थीजें सोना नहीं हुआ बरतो। यह बात उसके दिमाग में



उग वस्तु या जीवन को रिज्ज कर देनी है, इसीलिए तो वह खतरनाक है, भया-  
वह है।

मनुष्य दुनता पकाबौध हो जाता है कि उमे माया दिवनी नही, परन्तु यह  
माया ही होनी है, जो उमके जीवन को भयावह स्थिति मे डाल देती है। इस दुनिया  
के बाजार मे जगह-जगह माया का जाल बिछा हुआ है, माया मिश्रित पदार्थ मजे  
हूए हैं। प्रत्येक समझदार व्यक्ति को उममे सम्भल-गम्भलकर बचनता चाहिए। उतरा-  
ध्ययन सूत्र मे इसीलिए साधक को सावधान किया गया है—

“बरे पयाइ परिसकमाणो  
जं किजि पासं इह मप्रमाणो ॥”

साधक प्रत्येक कदम धरित होना हुआ फूंक-फूंक कर रमे। वह सागारिक और  
भौतिक आकर्षण की जिस किमी बीज को देते, उसे पाश (बन्धन) मानकर चले।

कवि अपनी मुरीभी तान मे सावधान करता है—

दुनिया एक बाजार है, सौदे सब तैयार हैं,  
जी चाहे तो लीजिए, नहीं इन्कार है ॥ प्रुष ॥  
दुनिया के बाजार मे आके लाखों लोग ठगाए जो ॥ लाखों ॥  
ऐसी वस्तु सेना भिन्न। सू घटां वहाँ मुल पाएजी ॥दुनिया०॥

कवि का सबेले माया मे जाल से सावधान रहने के लिए है। क्योंकि माया  
विचित्र-विचित्र वेध बनाकर आती है, प्रत्येक क्षेत्र मे इसका निराबाध प्रवेश है।  
प्रत्येक क्षेत्र के लोग इसे अपना कर अपना उरलू सीधा करते हैं। परन्तु गौतम श्रुति  
बहने हैं—माया को अपनाते वाले लोग अपने ही जीवन को खतरे मे डालते हैं।  
जब वे लोग माया के चक्कर मे फँसकर दुःख पाते हैं तथा मानसिक बन्धन भी पाते  
हैं, तभी उन्हें माया की भयकरता का ख्याल आता है, परन्तु तब निवाय पश्चात्ताप  
एवं शर्म के ओर कुछ हो नही सकता। पश्चात्य विचारक सी साइमन्स (C Sim-  
mens) भी इसी बात को पुष्टि करते हैं—

“For the most part fraud in the end secures for its comp-  
anions repentance and shame.”

अधिवांश रूप मे माया (छल-कपट) अन्त मे अपने साथियों के रूप मे पश्चा-  
त्ताप और सज्जा को गुरुरित रखती है।

दुनिया को घोलाघड़ी कहा गया है। घोला भी कितने धरले से दिया जाता  
है, उसका एक नमूना देखिये। एक बात्रीगर मे एक लोहे को इस ढंग मे पाठ पढ़ाया  
कि उससे जो कुछ भी पूछा जाय, उसका उत्तर उसके पाठ एक ही था—‘अन्न का  
सदेह’ हममे क्या सदेह है।’

एक दिन बात्रीगर खोराहे के बीच मे अपने छोटे का परिषय देने हुए खोर-  
खोर से कह रहा था—‘बहु कुबराज जो पदों मे बिराजमान है, देवत्व है, वह



माया की धर्म का एक सङ्कलन है। उस विषय में जहाँ भी माया बनाने से आज के कोई २० वर्ष पहले मायाप्रीत भी बी० ए० मेडनी से हो गई थी, जिस समय वे हैदराबाद सिन्ध के मजिस्ट्रेट थे। वह यह हुई कि मजिस्ट्रेट के समय एक भाई का पुत्र भाई के विरुद्ध घोराघड़ी का मामला पेज था। हादसा तबदाद के घरे में था। निर्णय का दिन आ गया था, मगर किसी कारणवश मजिस्ट्रेट फैसला नहीं लिख पाया था। मजिस्ट्रेट की अगली तारीख देनी ही थी। मगर सबोध में उस दिन अभियुक्त बचतरी में न आ गया। उसके बराम उसका पुत्र हाज़िर हुआ। जो पिता की बीमारी का मटिकिनेट लेकर यह प्रार्थना करने आया था कि अदालत अगली कोई तारीख दे दे। मजिस्ट्रेट ने तारीख तो दे दी, मगर यह बचाने का माहम न कर गया कि वह खुद भी फैसला नहीं लिख पाया है। किमती की मार बटिए, अभियुक्त अदालत के कार्य दरवार में भली-भांति परिचित था। उसे भली-भांति मायम था कि पीतशरी मामलों में अभियुक्त को बरी करना ही तो फैसला उसकी मर हाज़री में भी सुनाया जा सकता है, किन्तु सत्रा देनी ही तो अभियुक्त उपस्थित होना चाहिए। अभियुक्त के पुत्र ने जब यह खबर दी कि मजिस्ट्रेट ने अगली तारीख दे दी है, तो उसने तट निष्कर्ष निकाल लिया कि अब मुझे खेत जाना ही पड़ेगा। वह मूर्च्छित हो गया और उमी सड़में में चय गया। अगली तारीख की पेगी पर रोने हुए उसने पुत्र ने मजिस्ट्रेट को बताया कि फैसले की तारीख आगे पड़ने की बात सुनते ही पिताजी उसी सड़म में चल बसे। मजिस्ट्रेट गैहानी के दिम को बहुत डेग पहुँची। उसकी फैसले के घरे में अभावधानी से हुई जगती माया से एक ब्यादमी का देहान्त हो गया, यह मजिस्ट्रेट को खटकता रहता था। हालांकि मजिस्ट्रेट ने जो फैसला लिख रहा था, उसमें अभियुक्त को बरी कर रखा था। फैसला (उसके पुत्र को) सुनाते समय भी मजिस्ट्रेट की ओलो में ओलू थे। उसने बाद लगभग २५ वर्ष तक अपने द्वाग की गई यह सुदम माया काटे की तरह खटकती रही। सम्बर्द के चोप प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के पद पर रहते हुए सन् ७० में उन्होंने एक गिल्दी साप्ताहिक में अपने से अनजाने में बेबसूर ध्यक्ति की मौन का कारण बनने के पार (माया) को प्रकाशित करके अपने दिल का बोग हलका किया।

इसी तरह किसी भी घमांवरण, घन, विषम आदि में माया शन्य की तरह खटकती है।

माया : मित्रतानाशक

माया इसलिए भी भयावह है कि वह मित्रता का सात्मा करने वाली है। दशवैकालिक मूल में स्पष्ट बहा है—

‘माया मित्राणि भासेइ’

माया मित्रों की मित्रता का नाश कर देती है।

जहाँ मित्रों के बीच में माया होगी, वहाँ भी मित्र के दिल में बगट आसन जमा लेगा, वहाँ उनकी मित्रता टिख न सकेगी। प्रायः देखा गया है कि एक मित्र



की श्रीमती और कान्तिमती नामक दो पुत्रियों के जन्म हुआ। यमक विहोरावस्था पार करने सभी मौखन-अदम्य में आए।

एक दिन किन्ती कार्दकन अजोवदल मेट मरदुत आए। वहाँ उन्होंने शरती मवौग मुन्दरी को देग कर पूछा—“यह किन्ती मरती है?” उमर लिया—मय दावक की है। इन प्रकार मवौग मुन्दरी के नाम, रूप आदि के विषय में ज्ञानकर अपने पुत्र समुदरन के लिए जन्म मेट में उने मान ली। मय मेट ने स्वीकार किया और कुछ मुहूर्त में शोनों का विवाह हो गया। एक दिन मयुददल अपने मयुरान पहुँचा। मयुरान वालों ने उमकी मय आवमगन की। परन्तु दिन मयय मागधर में वह समय करने का रहा था, उम मयय मवौगमुन्दरी के माया जन्म पूर्ववद कर्म उदय में आए किन्ती उने ममीन कोई देवकाणी हुई और किन्ती पुत्र की छाया दिखाई दी। इस पर ने मवौगमुन्दरी के पनि को उमके प्रति शका हुई कि हो न हो, यह दुराचारिणी है। अब मवौग मुन्दरी जब मय में आई, तब वह उममें त्रिन-कुन बोला नहीं, न बैठने को कहा। फलत यही मुश्किल में जमीन पर रात बिनाई। मयेरा होने ही मयुरान वालों ने बिना पूछे ही उमने एक रमनेराम श्राद्धग को बह कर समुददल मोधा मारतपुर पहुँच गया। फिर बोजनपुर निवासी नन्दन मेट की वडी पुत्री श्रीमती (पूर्व जन्म की पत्नी) के साथ पाणिग्रहण किया। उमके छोटे भाई ने उमकी छोटी सहन कान्तिमती (पूर्व जन्म की पत्नी) के साथ विवाह किया। मवौग मुन्दरी की जब इन बातों का पता लगा तो वह अत्यन्त दुःखी हुई। उमका मयुरान जाना-आना भी बन्द हो गया। अब मवौगमुन्दरी ने अपना चित्त धर्म ध्यान की ओर मोड़ लिया। किन्ती साध्वी जी के पास उमने भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

एक बार अपनी मुष्णी के साथ विचरण करती हुई साध्वी मवौगमुन्दरी मारेतपुर गई है। वहाँ पूर्वजन्म के दोनों भाइयों के यहाँ भिक्षा के लिए गयी तो देखा कि उनमाल चित्त वाली दोनों भीजाइयाँ तो श्राविका बन गई हैं, दोनों भाई अभी धर्म पथ पर आये नहीं हैं।

एक दिन आर्षा मवौगमुन्दरी पारणा होने में वहाँ मोचरी गयी। उमी अरसर पर दूमरा मादाबद्ध कर्म उदय में आया। चान यो बनी कि श्रीमती अपने वासधर में बैठे हार विरो रही थी। साध्वी जी को आर्द देगकर यह हार छोडकर बीच में ही उमी ओर उन्हे भिक्षा देने के लिए रमोर्ड घर में गयी। वृत्ती बीच एक चित्रामण मोर आया और उम हार को निगन गया। साध्वीजी लकी-लकी यह देल रही थी। अब श्रीमती एक चाली में आहार लेकर उन्हे देने आयी, उने सेकर साध्वीजी वहाँ में चम दी। परन्तु श्रीमती ने जब हार विरो के लिए टयोपा तो वहाँ मिला नहीं। आश्चर्यपूर्वक अपने परिवार वालों से मबमे पूछा, उन्हेने कहा—“उन साध्वीजी के निवाय अभी और तो कोई आया नहीं था।” इस पर श्रीमती ने मरती डाटा—“आप मय क्या कहती हो? क्या साध्वीजी अभी हार उठा मरती है।” परन्तु और कोई





